UNIVERSAL LIBRARY
OU_180285
UNIVERSAL LIBRARY

निशानियां

(प्रेम-कहानियां)

लेखक :

उपेन्द्रनाथ अश्क

नेशनल इन्फरमेशन ऐंड पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
बम्बई

प्रथम संस्करण १९४७

सर्वाधिकार सुरक्षित

कीमत : २॥= रु.

नेशनल इन्फरमेशन ऐंड पब्लिकेशन्स लिमिटेड, नेशनल हाउस, ६, तुलक रोड, अपोलो बंदर, बम्बई–१, के लिए **कुसुम नैयर** द्वारा प्रकाशित और **वि. पु. भागवत** द्वारा **मौज प्रिंटिंग ब्यूरो,** गिरगांव, बम्बई–४, में मुद्रित.

विषय-सूची

१	अमर खोज	१
२	चट्टान	३
३	नज्जिया	२१
४	माया	२८
५	बदरी	३७
६	नासूर	४७
७	जादूगरनी	६०
८	चित्रकार की मौत	६४
९	पहेली	७८
१०	जुदाई की शाम का गीत... ...	९१
११	वह मेरी मँगेतर थी	१०१
१२	नरक का चुनाव	११७
१३	कुलांच	१३१
१४	पुष्प का परिणाम	१४१
१५	मरीचिका	१४४
१६	तार बाबू	१५२
१७	निशानियां	१५९

अशुद्धियां

पृष्ठ	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
३८	७	बच्चो	बच्चे
३९,४०	गानें	ब्राम्हण, ब्रम्हण	ब्राह्मण
५०	५	पीएंग	पियेंगे
७४	९	में	मेरे
७४	१८	निर्मिमेष	निर्निमेष
८५	५	करति	करतीं
९३	अंतिम	झूलत	झलक
९४	२१	पहले	पहने
९६	७–८	' न किसी ' एकही बार चाहिए था	
१०१	२,५,६,१३	भू-ग्रह	भू-गृह
१०४	४	सीदी-साधी	सीधी-सादी
१०४	७	शाहम	शाम

परिचय

'पिंजरा' और 'अंकुर' के बाद हिन्दी में अश्क जी की कहानियों का यह तीसरा संग्रह है। इसमें उनकी प्रेम–कहानियां संकलित हैं। पिछले बीस वर्ष में जहाँ संसार के जीवन में महान परिवर्तन हुआ है, वहाँ प्रेम–कहानी भी आकाश की रूमानभरी ऊंचाइयों से उतर कर कठोर धरती पर आ गई है।

एक समय था जब प्रेम–कहानी के साथ हमारी कल्पना हमें एक ऐसी दुनिया में ले जाती थी जो लौकिक होने पर भी अलौकिक और भौतिक होने पर भी आकाशीय होती थी। उन्हीं दिनों अश्क जी को लाहौर के प्रसिद्ध मासिक–पत्र 'रूमान' के वार्षिक अंक में 'नज्जिया' लिखने पर पचास रुपये का पुरस्कार मिलाथा। यह अंक की सबसे सुन्दर कहानी मानी गई थी।

इसके बाद समय आया जब इस रूमान में यथार्थ का हल्का–हल्का रंग झलक उठा। 'निशानियाँ' लिखने पर स्वर्गीय प्रेम चन्द जी ने बम्बई से लिखा था :—"निशानियाँ लिखने पर मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। यथार्थ का कितना सुन्दर सम्मिश्रण इस कहानी में है! मैं इसे 'हँस' में छापूँगा।"

फिर वक़्त आया कि प्रेम–कहानी में रूमान का स्थान पूर्णरूप से यथार्थ ने ले लिया और प्रेम के उस सुखद मधुर वातावरण में जीवन की कटुताएँ घुल–मिल गईं। 'चट्टान', 'नासूर', 'कुलाँच' इसी युग के चित्र हैं।

अश्क जी पिछले बीस वर्ष से लगातार लिखते आ रहे हैं। जब उनकी पहली कहानी छपी थी, तब वे नवीं श्रेणी में पढ़ते थे। मैंने जान बूझ कर उस समय की एक दो छोटी कहानियाँ संकलित कर दी हैं। सहृदय पाठकों को इस संग्रह में प्रेम–कहानी के सभी युगों का प्रतिनिधित्व मिलेगा और वे अपनी–अपनी रुचि के अनुसार रस और मनोरंजन पाएँगे।

—कौशल्या.

अमर खोज

जब पतझड़ का शासन था और बेलों के गहनें बयार के निर्दय डाकू ने लूट लिए थे, जब पेड़ पौधे अपनी आवरणहीनता को दुःख और आकांक्षा भरी निगाहों से तक रहे थे और वन उपवन में समीर को सुगन्धि के बदले पौधों के दीर्घ ऊष्ण उच्छ्वास मिलते थे—मुझे रूप और प्रेम किसी की खोज में भरमते हुए दिखाई दिये।

उनके वस्त्र अस्तव्यस्त थे, बाल बेपरवाही के जगत में बिखरे हुए थे, मुख पीत, ओंठ शुष्क और उनकी आँखों की मस्ती अस्त हो चुकी थी।

मैंने उनका रास्ता रोक लिया और पूछा—"तुम्हें किस वस्तु की खोज है ?"

"बसन्त की," उन्होंने उत्तर दिया और अपनी खोजमें चल पड़े।

जब बसन्त का राज था और बेलें फूलों के गहनों से लदी झूले झूल रही थीं; जब पेड़ पौधे अपनी नयी भूषा को गर्वकी दृष्टि से देख रहे थे और वन उपवन में समीर जी भर कर सुगन्ध बटोह रही थी—मुझे रूप और प्रेम फिर दिखाई दिये।

उनके केश सुन्दरता से गुथे हुए थे, मुख लाल, ओंठ मधुसिक्त और नयनों में मस्ती के सागर उमड़ रहे थे; किन्तु वे अब भी किसी की खोज में निमग्न थे।

मैंने उन्हें रोक लिया और पूछा–"अब तुम्हें किस चीज की खोज है ?"

"अनन्त वसन्त की," उन्होंने उत्तर दिया, और फिर अपनी मुहिम पर चल पड़े।

चट्टान

सन्ध्याका सूरज अस्त होनेसे पहले ही नीले-काले बादलोंमें छिप गया था, अन्धकार समयसे पहले ही चारों ओर छा गया था और गगरेटके पहाड़ी पड़ावमें धुआं देनेवाले एक-दो टीनके दिये टिमटिमाने लगे थे, जब पैदल चलता हुआ, थका-हारा शङ्कर वहाँ पहुँचा।

सबसे पहले उसने संक्षिप्तसे बाजारके एक घटिया-से ढाबेपर जाकर किसी न किसी तरह पेटकी आग बुझायी। फिर वह कहीं रातके लिए पनाहकी तलाशमें चल पड़ा।

यात्री इतने अधिक थे कि दोनों सरायोंमें तिल धरनेको भी जगह न थी। अगनित लोग बाहर खुलेमें ही डेरे डाले पड़े थे, ईंटें रखकर चूल्हे जला लिये गये थे। तीखी ठण्डी हवा चलने लगी थी, शोले कांप रहे थे और घाटीसे चीलके वृक्षोंकी सरसराहट शरीरमें झुनझुनी-सी पैदा कर रही थी।

बेबसीकी एक दृष्टि शङ्करने चारों ओर डाली। अपने तनपर गर्म कपड़ोंके अभावका उसे ध्यान आया और अन्यमनस्क-सा घूमता-घूमता वह नीचे घाटीमें उतर गया।

वहीं एक छन्नमें उसे रात-भरके लिए पनाहकी जगह मिल गयी। कोई मास्टरजी थे, उन्होंने वहां बच्चोंके लिए एक स्कूल खोल रखा था, और विपन्न पहाड़ी लोगोंके लिए एक छोटा-सा दवाखाना। नीचे बिछानेके लिए उन्होंने उसे एक चटाई दे दी, और ऊपरको कम्बल......और शङ्कर आरामसे लेट गया।

लेट तो गया, किन्तु नींद उसे नहीं आयी। वह बहुत थक गया था, अथवा खाना ठीक तरह न खा सका था, या फिर जगह नयी थी, कुछ भी

हो, वह सो नहीं सका। उठकर, कम्बलको गर्दन तक खींचकर वह खिड़कीमें बैठ गया और वहीं बैठे-बैठे उसकी आंखोंके सामने उसके अतीतकी समस्त घटनायें एक-एक करके फिर गयीं।

उन्हीं दिनों, जब वह छात्र था, अपने प्रान्तसे योजनों दूर इस पंजाबमें आ बसा था और फ़ाके काट कर, ट्यूशन पढ़ाकर और अवसर पड़नेपर सम्पन्न मित्रोंके आगे हाथ फैलाकर शिक्षाके उच्च-शिखर पर पहुँचनेका भरसक प्रयास कर रहा था। उसके मनमें कहींसे वैराग्यकी भावना उत्पन्न हो गयी थी—कामिनी-कञ्चनसे उसका मन कुछ उदासीन हो गया था। यह उदासीनता उन कष्टोंके कारण हुई, जो उसे शिक्षा-प्राप्तिके लिए उठाने पड़े; उस असमताको देखकर पैदा हुई, जो उसे अपने और दूसरे छात्रोंके मध्य दिखाई दी, अथवा अंगूरोंकी दूरीने उन्हें खट्टा बना दिया, कुछ भी हो, जब शास्त्रीकी डिग्री लेनेके बाद उसने मात्र अंग्रेजीमें बी० ए० करके शिक्षाका दामन छोड़ा, तो वह शरीरसे न सही, मनसे बैरागी बन चुका था।

बी. ए. पास करने के बाद कुछ और करने की योग्यता न रखने के कारण वह भी दूसरे सहस्रों शिक्षित युवकों की भाँति आजीविका की खोज में निमग्न हो गया था। उन्हीं दिनों मायावती (अलमोड़ा) से छपी हुई स्वामी रामकृष्ण के उपदेशों की एक पुस्तक उसके हाथ लगी और कामिनी-कंचन की ओर से उसका मन और भी विरक्त हो गया था।

शिक्षा प्राप्ति के बाद उसके मन में कभी कभी यह विचार सिर उठाया करता था कि अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करके, साहस और हिम्मतके साथ वह एम. ए., एम. ओ. एल. की डिग्री प्राप्त कर ले, किसी अच्छे से कालेज में प्रोफ़ेसर बन जाए और इस प्रकार अपने उन साथियों की दृष्टि में ऊँचा उठ जाए जो उसे हेय समझते थे, पर उसने पढ़ा कि धन तो कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसकी प्राप्ति को जीवन का ध्येय बनाया जाय-जिसे प्राप्त करके उस पर गर्व किया जाय।

जब सन्ध्या होती है, जुगनू चमकने लगते हैं, तो उल्लास और गर्व से

बयार की लहरों पर तैरते हुए वे कहते हैं–संसार को प्रकाशित करनेवाले हमीं तो हैं, किन्तु जब आकाश में तारे जगमगा उठते हैं तो उन्हें अपनी हीनताका आभास मिलता है–फिर तारों के मन में यही भ्रम आ बैठता है। वे समझते हैं कि संसार के अंधकार भरे मार्ग उन्हीं के दम से ज्योतिर्मय हैं। चाँद उनकी इस मूर्खता पर हँसता है और सृष्टि को ज्योत्स्ना से नहला देता है। " जगती को मैं ही आलोकित करता हूँ "–वह सोचता है, किन्तु तभी ऊषा क्षितिज पर मुस्करा कर सूर्य्य के आगमन की सूचना देती है और इधर चाँद की दीप्ति मन्द पड़ जाती है—धन-सम्पत्ति की भी तो ऐसी ही बात है—हम अपनी सम्पन्नता पर गर्व करते हैं, किन्तु ऊँट जब पहाड़ के नीचे पहुँचता है तो मालूम होता है कि दूसरे सहस्त्रों ऐसे हैं जिनकी तुलना में हम मात्र भिखारी हैं—और फिर धन–सम्पत्ति से सब कुछ मिल सकता है, शान्ति तो नहीं प्राप्त हो सकती।

और कामिनी—वह सोचा करता था—प्रोफ़ेसर बन कर किसी शिक्षित और सुसंस्कृत सुन्दरी को अपनी संगिनी बनाएगा और कालेज की उन तितलियों को जो उसकी ओर झूठमूठ देखना भी पसन्द न करती थीं, दिखा देगा कि वह उन से कहीं अधिक सुन्दर और शिक्षित संगिनी के योग्य है—(विवाह के लिए अबतक भी भारत में धन और पद की अधिक आवश्यकता है। इनके सामने ज्ञान और सौन्दर्य्य अब भी बाज़ी हार जाते हैं–उसने प्रायः अपने से कहीं अधिक काले कलूटे, पर सम्पन्न युवकों को सुन्दर बीवियाँ बग़लमें लिए घूमते देखा था) किन्तु उसने पढ़ा—यह नारी ही है जो मनुष्य को दास बना देती है। स्वच्छन्द पक्षी के पर झकझोर डालती है। जीवन की आवश्यकताओं को बढ़ाकर उसे झुकना सिखा देती है। और उसने सोचा—न, वह नहीं झुकेगा। वह स्वतन्त्र रहेगा। आकाश की ऊँचाइयों में स्वच्छन्द रूप से उड़ेगा और कंठ के भरपूर स्वर से मधुर गान गाएगा।

खिड़कीके बाहर घाटी तारीक थी। कभी–कभी किसी छतका कोई चिराग़ झिलमिला उठता था। बाहर देखना छोड़कर शङ्कर खिड़कीसे पीठ

लगाकर बैठ गया। कितनी देरसे वह भटक रहा था और अभी उसे कितना भटकना शेष था ? और मञ्ज़िलकी ओर वह कुछ भी तो नहीं बढ़ा।

उसने मुंहपर भी कम्बल ले लिया और लेट गया। ऊपर बाज़ारमें बैलगाड़ियोंकी चरमर-चख़चूं शुरू हो गयी थी। मनचले यात्री, जो सुबह होते-होते मञ्ज़िलपर पहुंचकर ही आराम करना चाहते थे, मार्गके आरामका मोह छोड़कर चल दिये थे। उसने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा 'उसकी माञ्ज़िल कहां है ?' उसने सोचा, 'वह तो कहीं भी न पहुँच सका।' न विश्वविद्यालयकी सबसे बड़ी डिग्री ले सका और न स्वतन्त्र रूपसे आकाशकी ऊँचाइयोंमें उड़कर मधुर गान ही गासका।

कामनाओंको त्याग देनेके सम्बन्धमें निर्णय कर लेना सुगम है, किन्तु इस निर्णयको कार्यरूपमें परिणत करना उतना सुगम नहीं।

और वैरागी बननेके बदले, उसने द्वाबाके एक नये सनातन धर्म हाई स्कूलमें मुलाज़मत कर ली थी। नये, और फिर सनातनधर्म स्कूलमें, इसलिए कि न वह ट्रेण्ड था और न सरकारी अथवा देरसे जमे हुए स्कूलोंमें उसे आसानीसे नौकरी मिल सकती थी। वह स्वयं लाहौरके सनातनधर्म कालेजका ग्रेजुएट था, इसलिए प्रिन्सिपलकी सिफ़ारिशके साथ उसे वह जगह मिल गयी।

किन्तु सनातनधर्मी संस्थाओंमें पैसेको जोड़-जोड़कर रखना और दूरदर्शितासे ख़र्च करना कहां ? सालमें ही वह स्कूल बन्द हो गया।

शङ्कर स्वतन्त्र हो गया। किन्तु आकाशकी ऊंचाइयोंमें वह फिर भी न उड़ पाया। आगे शिक्षा प्राप्त करनेको उसका जी न चाहता था और वैरागके लिए जिस अभ्यास तथा पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकता थी, वह उसके पास न था। आख़िर उसने सोचा था कि वह ,देश चला जायेगा, किसी गुरुकी तलाश करेगा, जो उसे ठीक मार्गपर लगा दे। किन्तु जानेसे पहले वह शिवालिककी पहाड़ियोंमें चित्तपुरनीके मेलेको देखनेका लोभ संवरण न कर सका था।

और वह मेला देख आया था। होशियारपुरसे पैदल चित्तपुरनी तक गया था और वहांसे पैदल वापस आया था। उसके पांवोंमें पीड़ा

थी, टांगें थक गयी थीं और उसके मनमें एक अज्ञात-सी बेचैनीकी आग सुलग रही थी।

वह उठकर फिर बैठ गया और चुपचाप बाहरकी ओर देखने लगा।

आकाशपर तीतरके परों-से बादल छाये हुए थे, और उनके पीछेसे चांद अपनी मद्धिम रोशनीको धरतीके बासियों तक पहुंचानेका विफल प्रयास कर रहा था। किन्तु इस प्रकाशसे योगियोंको कुछ लाभ पहुंचता हो, यह बात नहीं—सामने दूर सड़कपर शङ्कर लालटेनोंकी टिमटिमाती हुई रोशनियोंको मन्थर गतिसे चलते हुए देख रहा था। उनमेंसे कुछ पैदल चलनेवालोंके हाथोंमें थीं और कुछ बैलगाड़ियोंके नीचे लटक रही थीं। जब एक रोशनीके बाद लम्बी पंक्तिमें दूसरी रोशनियां दिखाई देतीं, तो शंकर समझ जाता कि गाड़ियोंके आगे-आगे एक व्यक्ति हाथमें लैम्प लिये चला जा रहा है, और फिर ये रोशनियां एक-एक करके अन्धकारमें खो जातीं—और इसी तरह बैलगाड़ियोंकी आवाजें भी स्मृतिके किसी दूरस्थ प्रदेशसे आनेवाली आवाजोंकी भांति मालूम होने लगतीं। फिर नयी गाड़ियां आतीं और नयी रोशनियां... लेकिन नीचे घाटी उसी तरह तारीक थी और चांद ऊपर उसी तरह लहरों-सी बदलियोंमें मुस्करा रहा था।

शङ्करने एक लम्बी सांस ली। पांवोंकी आहट पाकर वह चौंका। शायद दूसरे मेहमानोंका प्रबन्ध करके मास्टरजी उधरसे गुज़र रहे थे।

"नींद नहीं आ रही क्या?" खिड़कीके धीमे प्रकाशमें उसे बैठे देखकर उन्होंने हमदर्दीसे भरी तरल वाणीमें पूछा।

उनके स्वरमें कुछ ऐसी बात थी, जो दूसरोंमें अनायास ही सत्कारकी भावनाको जगा देती थी।

"जी नहीं,"—खिड़कीसे दृष्टि हटाकर और कुछ प्रकृतस्थ होकर मुड़ते हुए उसने कहा—"नींद मुझे कुछ देरसे आती है।"

उस समय मास्टरजी स्वयं भी उसके पास ही कच्चे फ़र्शपर बिछी हुई चटाईपर बैठ गये।

मास्टरजीकी बातोंमें कुछ ऐसा जादू था, उनकी वाणी और उनके व्यवहारमें कुछ ऐसी सहानुभूति थी, कि एक सरल निरीह बालककी भांति शङ्करने अपने जीवनके समस्त दुःख, सङ्घर्ष और असफलताको उनके सामने रख दिया।

उन्होंने उसे सान्त्वना दी।

शङ्कर चुपचाप उनकी बात सुनता रहा। उसने महसूस किया, जैसे उनका स्वर एक ठण्ढे मादक हमदर्द मरहमकी भांति उसके घावोंपर लगता चला जा रहा है।

और तभी वहीं बैठे-बैठे उन्होंने बताया कि किस प्रकार उन्होंने स्वयं एक धनी-मानी घरमें पैदा होकर इस कटुताका रसास्वादन किया है। पिताके सम्पन्न होनेके बावजूद उन्होंने उनसे किसी प्रकारकी सहायता नहीं ली, रिश्तेनातोंके लङ्गरको तोड़कर वे अपनी जीवन-नौकाको स्वयं ही खेते रहे—वे सरकारी नौकर रहे, अध्यापक, क्लर्क, एकाउण्टेण्ट, स्वयंसेवक बने, कई संस्थाओंके मन्त्री रहे; किसानोंमें उन्होंने काम किया, महात्मा गांधीके आश्रममें वे रहे, जेल भी दो बार हो आये और इसके बाद ही उन्होंने मानवताकी सेवाके साथ-साथ अपनी आत्माकी सेवा करनेका भी निर्णय कर लिया।

"मैंने सदैव यह महसूस किया है," शंकरकी पीठको धीरेसे थपथपाते हुए उन्होंने कहा, "कि जीवनमें यदि कोई ऊंचा उद्देश्य नहीं, तो यह जीवन कुछ भी नहीं, एक खाली खोखली-सी चीज है और फिर अपनी आत्माको जीवनकी समस्त गन्दगीसे साफ़ करके उस महान् निस्सीम शक्तिके साथ मिला देनेसे बड़ा उद्देश्य और कौन-सा हो सकता है?"

शङ्करने कभी-कभी अपने मनमें सिर उठानेवाले सन्देह को प्रकट करते हुए कहा, "किन्तु यह सब तो सबकुछ त्याग देने, माया-मोहके जालको तोड़ फेंकनेके बाद ही सम्भव हो सकता है, पर यदि संसारमें सभी संन्यासी......"

"मैं संन्यासी होनेके लिए नहीं कहता," उन्होंने कहा, "संसारमें रहो, किन्तु संसारके होकर न रहो—उस पहाड़ की भांति, जिसके पांव पातालके अंधेरेमें होते हैं, किन्तु जिसकी चोटियां स्वर्ण ज्योतिसे जगमगाती रहती हैं।"

"किन्तु"......पर शङ्कर जो कहना चाहता था, उसके लिए उसे शब्द नहीं मिले।

उसके सङ्कोचका कारण भांपकर मास्टरजी बोले, "तुम शायद यह कहना चाहते हो कि यह सुगम नहीं, हां, यह सुगम नहीं, किंन्तु जो व्यक्ति एक बार संयमके पारसको छूकर सोना बन जाता है, वह यदि वर्षों धरतीमें दबा रहे, तो सोनेका सोना रहता है।"

शङ्करको उस रात नींद न आयी। मास्टरजीका एकएक शब्द उसके कानोंमें गूंजता रहा और जब उसकी आंख लगी, तो उसने अपने-आपको चट्टान बनते पाया-चट्टान, जिसपर माया-मोहकी वर्षायें, आंधियां, तूफ़ान कुछ प्रभाव नहीं डाल सकते-उसने देखा, वह सुख-दुःखकी परवाह न करके, गांवकी रूखी-सूखी रोटीपर ख़ुश रहकर, धरतीपर सोकर बालिग़ोंको शिक्षा दे रहा है। फिर उसने अपने-आपको औषधियोंका बैग लिये गांव-गांव घूमते देखा। फिर उसने अपने-आपको जेलमें पड़े पाया, जहां क़ैदियोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए उसने भूख-हड़ताल कर दी-उसे पीटा गया, उसे कोड़े लगाये गये—किन्तु वह स्थिर, अविचल, अटल बैठा रहा—चट्टान जो बन गया था वह।

लेकिन फिर उसने इसी चट्टानको बिजलीकी-सी तेज़ीसे एक ढलवान पहाड़ीपर लुढ़कते हुए, नीचे सागरकी उबलती हुई लहरोंकी ओर जाते पाया...

और उसकी आंख खुल गयी। उसका हृदय ज़ोर-ज़ोरसे धक्-धक् कर रहा था। उसके मस्तकपर पसीना आ गया था। बाहर चीलके वृक्षोंमें हवाकी सरसराहट कुछ और तेज़ हो गयी थी। चांद शायद थककर सो गया था, लेकिन शङ्कर जागता रहा।

यह ढलवान पहाड़ी भाभी थी और उबलती हुई लहरें थीं वासनायें-इसका पता शंकरको बहुत देर बाद लगा।

भाभी भाई साहबकी पत्नी थी और भाई साहब कहकर वह मास्टर-जीको ही पुकारने लगा था। दूसरी सुबह उसने आपको मास्टरजीके चरणों पर डाल दिया था और उन्होंने उसे तसल्ली दी थी कि चाहे उसे धनसम्पत्ति तथा सुख-वैभव न मिलें, किन्तु मनकी शान्ति उसे अवश्य ही प्राप्त होगी। और शंकर उनके पास ही रहने लगा था।

और पहले-पहल तो उसे यह शान्ति मिली थी। जब कभी वह भाई साहबके पास बैठा, जब भी उसने उनकी बातें सुनीं, उसके मनको शान्ति मिली। उसे सदैव ऐसा आभास मिला, जैसे सन्तोषका एक निस्सीम सागर हिलोरें ले रहा है और इसमें वह जी भरकर डुबकियां लगा रहा है। हां, बादकी बात और है।

लोग भाई साहबको 'मास्टरजी' इसलिए कहते थे कि उन्होंने अपने खर्चेपर पहाड़ी लोगोंके बच्चोंका एक छोटा-सा स्कूल खोल रखा था, लेकिन इस प्रकार तो वे डॉक्टर साहब भी कहलवा सकते थे और कुछ लोग तो उन्हें इस नामसे पुकारते भी थे। उनका वास्तविक नाम 'दीनदयाल' था और उसने भाभीसे उनके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें सुनी थीं।

उनके पिता सरकारी स्कूलके हेड मास्टर थे। काफ़ी सम्पन्न थे। किन्तु कॉलेज छोड़नेके बाद उनको पब्लिक सेवाकी सनक (भाभी यही शब्द प्रयोगमें लातीं) सवार हो गयी। और कॉलेज भी तो उन्होंने इसी सनकके कारण छोड़ा। मेडिकल ग्रुपमें अच्छे-भले पढ़ रहे थे। फ़र्स्ट-ईयर की परीक्षा दी थी कि कॉंग्रेसका आन्दोलन आरम्भ हो गया। वे पढ़ाई छोड़ बैठे। फिर पिताने मिल-मिलाकर, समझा-बुझाकर, एकाउण्टेण्ट जनरलके दफ़्तरमें नौकर करवा दिया और लगे हाथों (उनके 'न' 'न' करनेके बावजूद) शादी भी कर दी; लेकिन........

"नौकरीसे त्याग-पत्र, मालूम है, इन्होंने कैसे दिया?" एक दिन खाना पकाते हुए भाभी कहने लगीं, "न वहम, न गुमान, बस सुन लिया कि त्याग-पत्र दे आये हैं और फिर त्याग-पत्रमें साफ़ लिख आये कि जिस सरकारने हमें एक सदीसे ग़ुलाम बना रखा है, उसका पुर्ज़ा बनकर मुझे काम करना स्वीकार नहीं। जब लालाजीको (अपने ससुरको भाभी लालाजी कहकर

बुलाती थीं) इस बातका पता लगा, तो उन्होंने सिर पीट लिया। वे थे सरकारी नौकर। उन्होंने बहुतेरा समझाया कि नौकरी छूट जायेगी। अफ़सर मुझे सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगेंगे; लेकिन वे तो निर्णय करके उसे बदलनेके दिन पैदा ही नहीं हुए। घर छोड़ गांधीजीके आश्रममें चले गये।"

इसके बाद भाई साहबने जनताकी सेवाके और बीसों काम किये। पिता उन्हें सारी उम्र समझाते रहे, लेकिन वे अपनी धुनमें पागल-से रहे। स्वतन्त्रताकी प्राप्तिको उन्होंने अपना आदर्श बना लिया। फिर सामाजिक और राजनीतिक आज़ादीके लिए कोशिश करते-करते वे अपनी रूहकी आज़ादीके लिए प्रयत्न करने लगे। उन्हीं दिनों उनके पिताका देहान्त हो गया। तब उनके हिस्सेमें जो रुपया आया, उसे बैङ्कमें जमा करानेके पश्चात्, बच्चोंको बोर्डिङ्गमें दाखिल कराके, वे गगरेट आ रहे। योग-साधनका छोटासा आश्रम उन्होंने खोल लिया। बैङ्कमें सूदसे बच्चोंकी शिक्षाका ख़र्च निकालकर जो कुछ बचता था, उससे आश्रमका ख़र्च चलाने लगे, जिसमें उन्होंने एक छोटा दवाख़ाना और स्कूल भी खोल रखा था। "ये तो मुझे भी वहां ही छोड़ते थे," एक दिन भाभीने उसे बताया, "लेकिन मैं रही नहीं, साथ ही आ गयी।"

लेकिन वहां आकर भाभी प्रसन्न हो, यह बात तो न थी। शङ्करने उसे कम ही हँसते देखा था। जब भी कभी वह हँसी थी, शङ्करको उसकी हँसीमें एक गहरी व्यथा और व्यङ्ग साफ़ दिखाई दिया था। और फिर शङ्करने सुना था कि उसका दिल बड़ा कमज़ोर है। ज़रा-ज़रा-सी बातपर बेतरह धड़कने लग जाता है। फिट भी आते हैं और सिर-दर्दकी आम शिकायत उसे रहती है। उसकी आंखोंमें कुछ ऐसी प्यास, कुछ ऐसी अतृप्ति रहती थी कि शङ्करके हृदय में दयाकी हल्की-सी भावना जाग उठती थी—

लेकिन वह उनकी आंखोंमें कम ही देखता था। भाई साहबसे उसने सीखा था—"नारीसे बचनेके लिए सदैव उसके चरणोंकी ओर ध्यान रखो। उसे सदैव मांके रूपमें देखो।" वह ऐसा ही करता भी था। भाभी उसे

सारे संसारकी माताके रूपमें दिखाई देतीं और दिल ही दिलमें वह उनके चरणोंमें झुक जाता और ऐसा करनेमें असीम शान्ति और आत्म-तुष्टि उसे प्राप्त होती। किन्तु ऐसे भी अवसर आ जाते, जब इस शान्ति और सन्तोषके पांव डगमगा जाते......

भाभी पका रही थीं और वह नीची नज़र किये रसोईमें बैठा खाना खा रहा था कि बात चल पड़ी सूखी रोटियों और पराठोंके सम्बन्धमें। तब भाभीने बताया कि भाई साहबके साथ निरन्तर अनचुपड़ी रोटी खानेके कारण अब तो उसे हजम ही नहीं होते, किन्तु वह पराठे खानेकी बड़ी शौकीन थी। सूखी तो दूर, वह चुपड़ी रोटी तक न खा सकती थी। अपने पिताकी इकलौती सन्तान थी और उसके पिता इक्ज़ीक्यूटिव इञ्जीनियर थे। और फिर आंखें भरकर उसने उसे बताया था कि किस प्रकार उनकी मृत्युके बाद चचाने, जो उनके ख़र्चेपर ही विलायतसे पढ़कर आये थे, उनकी बहुत-सी जायदाद सँभाल ली और किस तरह दादीने भी चचाकी सहायता की और किस तरह उसकी मांको तङ्ग किया गया, किस प्रकार उसे पहला फिट आया।

शङ्करने आंख उठाकर देखा था। भाभी दुपट्टेसे आंसू पोंछ रही थी। उसके मनमें दयाकी एक हल्की-सी रेखा खिंच गयी, किन्तु उसके दुपट्टा हटानेसे पहले उसने अपनी आंखें नीची कर लीं।

फिर एक दिन भाभीने उसे बताया कि वह यों गुमसुम रहनेवाली भी न थी। खेलने-कूदने, हँसने-हँसानेवाली लड़की थी। वह इस ज़ोरसे ठहाका मारकर हँसती थी कि उसकी मांको प्रायः उसे झिड़कना पड़ता था-इस तरह हँसेगी, तो ससुरालवाले तुझे घरसे निकाल देंगे। उन्हें क्या मालूम था कि ससुराल जाकर उसके क़हक़होंका सोता ही सूख जायेगा।...और एक व्यङ्ग भरी मुसकान भाभीके ओठोंपर फैल गयी थी।

शङ्कर निगाहें उठाये बिना न रह सका था; किन्तु भाभी उसकी ओर ही देख रही थी, इसलिए उसने अपनी दृष्टि पूर्ववत् उसके चरणोंमें जमा दी थी।

भाई साहबकी सरगर्मियों, उनके त्याग, उनकी आध्यात्मिकता, जीवनके गहन फिलसफेसे भाभीको कोई दिलचस्पी न थी। प्रायः वह कहा

करती थी–" लोगोंकी बला अपने सिर ले लेते हैं, बैठे-बिठाये मुसीबत ले लेना अच्छी बात है क्या ? " और भाभीने बताया था कि किस तरह जब भाई साहब होशियारपुरके एक नेशनल स्कूलके हेड मास्टर थे और वहांकी कांग्रेस कमेटीके मन्त्री थे, तो एक लड़की उनके पास आ गयी थी। उनके पड़ोसमें ही रहती थी। माता पिताकी मृत्यु और भाइयोंकी बेकारी और आवारगीके कारण बेबस थी और मामा उसे कहीं बेच देना चाहते थे। वह इनकी पनाहमें आ गयी थी। इन्होंने उसका विवाह न होने दिया। उसे शिक्षा देकर अपने पांवोंपर खड़ी होनेके योग्य बनाया। लोग भांति-भांतिकी बातें बनाने लगे, उनके चरित्रपर सन्देह करने लगे...और व्यङ्ग तथा विवाद-भरी मुसकानसे भाभीके ओंठ फैल गये—" इतनी देर हो गयी, मुन्नीके जन्मके बाद जो मुझे ही बहिनकी भांति समझते हैं, उनपर वह लड़की ही क्या जादू कर देती।......

और मुन्नी उनकी दूसरी लड़की थी और आठ वर्षकी थी।

शङ्करने झुकी हुई दृष्टिसे भाभीकी ओर देखा था। वह उसकी कमीजके बटन टांक रही थी–उसके सुन्दर चेहरेपर असन्तोषकी हल्की-सी छाया थी। आंखें थकी-थकी थीं और दोपहरकी गर्मीसे कुम्हलाये हुए पत्तोंकी भांति उसके ओंठ शुष्क और मुरझाये हुए थे......

शङ्करके हृदयमें दयाका सागर–सा हिलोरें मारने लगा और उसका हृदय धक्–धक् कर उठा।

दूसरे दिन भाई साहबने उसे फिर बताया कि उन लोगोंके लिए, जो अपनी आत्माको पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र देखना चाहते हैं, कामिनी–कञ्चनकी इच्छाको त्यागना अनिवार्य है। लेकिन दुनियादारोंके लिए इतना ही यथेष्ट है कि वे दुनियामें रहते हुए दुनियाके होकर न रहें। वे धन-वैभवके मध्य रहें; किन्तु उनकी लौ सदैव परमात्मासे लगी रहे। उस गृहस्थके लिए, जो अपनी रूहको आजाद देखना चाहता है, यह आवश्यक है कि जब एकदो बच्चे पैदा हो जायँ, तो अपनी पत्नीके साथ भाईकी

भांति रहे और सदैव परमात्मासे प्रार्थना करे कि वह उन दोनोंको इस आध्यात्मिक जीवनके लिए शक्ति प्रदान करे।

शङ्कर कुछ कहने लगा था, लेकिन न कह सका।

भाई साहब बोले—'मैं जानता हूं, तुम जो कहना चाहते हो। ऐसा करना कठिन है। लेकिन मैं तुम्हारे सामने बैठा हूं। यह नहीं कि मैंने अपनी भावनाओंपर पूरा-पूरा क़ाबू पा लिया है। लेकिन मैंने इन आदेशोंको शब्दतः क्रिया-रूपमें परिणत करनेका प्रयास किया है।'

और भाई साहब अब भी नियमित रूपसे दो-तीन दिन एकान्त वास करते थे।

लेकिन भाभीको इन दिनों जरूर ही कोई कोई कष्ट हो जाता। दिल धड़कने लगता अथवा सिरमें पीड़ा होती। शङ्करको एक-दो बार उनका सिर दबाना पड़ा था। कनपटियोंपर तेल लगाना पड़ा था और एक दिन कनपटी सहलाते-सहलाते उसका हाथ गाल तक चला गया था—गर्म नर्म गालपर, और उसका हृदय धक्-धक् करने लगा था। और उसी समय उसे छोड़ वह उठ आया था। उसने आपको कोसा था और निर्णय किया था कि अब कभी वह उनका सिर न दबायेगा। किन्तु एक दिन फिर भाभीको फिट आ गया और भाई साहब पूर्ववत् नीचे घाटीके एक सुन्दर सुरम्य शान्त स्थानमें अपना दिन गुज़ारने चले गये थे।

भाभीको फिट पहले भी आते—मांके दुःखकी बातें करते-करते, चचाकी कृतघ्नताका जिक्र करते-करते या फिर मनोहर—अपने ससुरके बड़े भाईके छोटे लड़केकी याद आ जानेपर। उसकी हँसी, उसके मज़ाक, उसकी बातों, भाभीकी फ़रमाइशोंको पूरा करनेके लिए उसकी उत्सुकता, उसकी हर अदाका जिक्र करते हुए भाभी रो पड़ती और उसे फिट आ जाता।

किन्तु इन दौरों, सिर-दर्दों अथवा दिलकी बीमारीके इन हमलोंमें भाई साहब गम्भीरतासे अपने काममें निमग्न रहते और जब कभी उनकी उपस्थितिमें ही ऐसी-वैसी बात होनेपर भाभीको फिर दौरा आ जाता, तो वे कभी

न कभी घबराते थे, जैसे यह भी उनके प्रोग्रामका एक भाग था। हां, रातका अध्ययन और प्रातःको चर्खा कातना वे छोड़ देते और भाभीके सिरहाने आ बैठते। इस ठण्डी तीमारदारीसे भाभीको सत्य ही कोई लाभ होता हो, यह तो शङ्कर नहीं जान सका। लेकिन भाभी जल्द ही बिस्तर छोड़ देती और भाई साहब स्वयं खाना बनानेसे बच जाते।

किन्तु उस दिन जब भाभीको फिट आया, तो शङ्कर हैरान रह गया। शाम हो गयी थी और भाई साहब आये न थे। शायद इधर-उधर किसी रोगीको देखने चले गये थे और वह अन्दर कमरेमें दियासलाई लेने गया था, कि उसने अँधेरेमें सिसकनेकी आवाज़ सुनी।

पहले तो कमरेमें अन्धकार देखकर उसने समझा था भाभी अन्दर नहीं है और वह ताकसे दियासलाईकी डिबिया उठाने लगा था, लेकिन उसी समय उसने सुना था, जैसे बिस्तरपर लेटा हुआ कोई सिसक रहा है।

"भाभी!"

सिसकियां और भी तेज हो गयीं।

"भाभी...भाभी!"

"हाय, मेरे दिलको कुछ हो रहा है..." और वे ऊंचे-ऊंचे चीख़ने लगी थीं!

"भाभी।" और वह बिस्तरके समीप चला गया।

"मेरा दिल...हाय मेरा दिल डूब रहा है।" और भाभी तड़पने लगीं।

शङ्करके हाथ-पांव फूल गये। उसने जल्दीसे लैम्प जलानेका प्रयास किया, किन्तु तीन दियासलाइयां जलानेके पश्चात् कहीं वह लैम्प रोशन कर सका।

लैम्प जलाकर वह भाभीके पास आया। वह उसी प्रकार दिलपर हाथ रखे ऊंचे-ऊंचे चीख़ रही थी। इधरसे उधर और उधरसे इधर सिर मार रही थी।

ऐसा सख़्त फिट शङ्करकी उपस्थितिमें भाभीको पहले कभी न आया था। एक बार जब उन्हें पहले दिलकी तकलीफ़ हुई थी, तो भाई साहबने उनको स्पिरिट ऐमोनिया पिलायी थी। वह भागकर भाई साहबके कमरेसे दवाईकी शीशी उठा लाया और एक चमचा उसने भरा।

" हाय मुझे अच्छी नहीं लगती ! "—भाभी चीखीं और उन्होंने दांत बन्द कर लिये।

और सबकी सब दवाई उनके गालपर होती हुई गर्दनपर बह गयी।

" न पियेंगी, तो आराम कैसे आयेगा ? " और उसने दूसरा चमचा भरा।

लेकिन उन्होंने उसका हाथ झटक दिया। दवाई फिर गिर गयी और वे तड़पती रहीं।

इस बार शङ्करने लिहाफ़ उनके गले तक कर दिया। चारपाईपर बैठकर उनके दोनों हाथ थाम लिये और उन्हें भाभीकी छातीपर रखकर उनपर अपना घुटना रख दिया। चमचा भरकर एक हाथसे उनका मुँह खोलकर उसने उन्हें दवाई पिला दी और फिर सँभलकर नीचे उतर आया। लेकिन इतने ही में उसके माथेपर पसीना आ गया था और उसका दिल धड़कने लगा था।

भाभीने लिहाफ़को हाथसे परे कर दिया। दवाईकी कड़ुवाहटसे एक-दो बार खांसीं और फिर हाथसे सीनेको दबाकर उसी तरह चीखने लगीं।

" अभी आराम आ जायेगा। दवाईको अन्दर तो जाने दो। " शङ्करने हकलाते हुए कहा। उसकी सांस फूल गयी थी।

" हाय मेरे दिलको दबाओ, मेरा दिल डूब रहा है !"

शङ्करने फिर लिहाफ़को ऊपरकरके भाभीके वक्षको हाथसे दबाया... धक्...धक्...उनका दिल धड़क रहा था।

" और दबाओ।" जैसे उन्हें सुख मिल रहा था।

शङ्कर चारपाईके पास घुटनोंके बल बैठ गया और उसने दोनों हाथ भाभीके दिलपर रख दिये। दबाते-दबाते वह इतना झुक गया कि उसका अपना सीना...धक्–धक् करता हुआ सीना भाभीके वक्षपर बिछ गया।

भाभीको आराम–सा महसूस होने लगा। उनकी चीखें बन्द हो गयीं। अब वे सिर्फ़ सिसक रही थीं।......

किन्तु शङ्करका शरीर गर्म हो रहा था और उसका हृदय और भी जोर–जोरसे धड़क रहा था कि भाई साहब आ गये।

आकर उसका स्थान उन्होंने सँभाल लिया और औषधिके प्रभावसे अथवा उनकी उपस्थिति के कारण भाभीको भी आराम आ गया।

शङ्कर उस रात न सो सका था। प्रतिक्रियाका तूफ़ान उसके अन्तरमें उठ रहा था। भाई साहबकी मूर्ति बार–बार उसके समक्ष आ जाती थी– इस व्यक्तिने इतने बड़े सुखको तिलाञ्जलि दी है, तभी कहीं आध्यात्मिक आकाशकी ऊंचाइयोंमें उड़ सका है, तभी रूहको बन्धन मुक्त कर सका है और वह स्वयं ज़रा–सा टुकड़ा आगे पाकर लपक उठा...किन्तु शरीरकी आवश्यकतायें......

और दूसरे दिन उसने अपने समस्त सन्देह भाई साहबके सामने रख दिये। शरीरकी यौन–सम्बन्धी आवश्यकताओंका ज़िक्र करते हुए उसने पूछा कि दूसरेके शरीरको पाकर भी संयमको क़ायम रखना किस प्रकार सम्भव है?

भाई साहब हँसे थे—" काम-सम्बन्धी आवश्यकतायें भी शरीरकी दूसरी ज़रूरतोंकी-भांति हैं। जिस तरह अभ्याससे हम शरीरकी दूसरी ज़रूरतोंको बसमें कर लेते हैं, उसी प्रकार इनको भी बसमें किया जा सकता है। अपनी इच्छाओं और अभिलाषाओंको हम जितना बढ़ा लेते हैं, उतनी ही वे बढ़ जाती हैं, जितना घटालेते हैं, घट जाती हैं। इच्छाओं, आकांक्षाओंकी दुनियामें रहता हुआ भी मानव संयम और तपसे उनपर अधिकार प्राप्त कर सकता है। वास्तवमें उसे चट्टान बन जाना चाहिए–चट्टान, जो वर्षा और धूप दोनोंको समान रूपसे सह सके। आवश्यकताओंका आधिक्य अथवा अभाव, कोई भी उसे अशान्त न कर सके।"

और 'चट्टान' और 'शान्ति' दो शब्द शङ्करके मस्तिष्कमें घूमते रहते थे और उसने फ़ैसला किया था कि वह चट्टान बन जायेगा। चट्टान जैसी अविचल शान्ति प्राप्त करेगा। अपनी कामनाओंपर अधिकार पायेगा। एक बार उनके आगे हथियार डाले कि मनुष्य उसमें फँसा...नहीं, वह ऊपर उड़ेगा, आकाशकी उंचाइयोंमें।

लेकिन भाभी...वह जो असन्तोषकी सुलगती हुई चिनगारी थी।

एक दिन भाई साहब पासके गांवमें रोगीको देखनेके लिए गए हुए थे। शंकर अपने कमरेमें दीवारसे पीठ लगाये, खूंटीसे टँगी हुई लैम्पके नीचे बैठा अध्ययनमें निमग्न था कि भाभी आ गयीं और फिर उसके पास ही बैठ गयीं। शंकर खामोशीसे पुस्तक पढ़ता रहा, भाभी वहीं बैठी रहीं। वह पढ़ता रहा, वे बैठी रहीं। फिर एक अंगड़ाई-सी लेकर वे वहीं चटाईपर उसके पास लेट गयीं।

शंकरने कनखियोंसे एक बार उनकी ओर देखा। साड़ीका आंचल सिरसे खिसक गया था। ब्लाउजका बटन खुल गया था। वक्ष कुछ नङ्गा-सा हो गया था।...शंकरने आंखें हटा लीं। किन्तु दृश्य उसकी आंखोंके आगे तैरने लगे। और फिर उसे काली लकीरोंके अतिरिक्त कुछ दिखाई न दिया। और फिर उसके सामने पुस्तक भी न रही। रही केवल पास लेटी नारीके वक्षकी गहरी-सी, अंधेरी-सी लकीर, जो दियेके उस मध्यम प्रकाशमें दो पहाड़ियोंके मध्य किसी घाटीकी भांति दूर अंधेरेमें गुम हो जाती थी।

शङ्करने फिर एक बार देखा। दो पहाड़ियोंके मध्य उस अंधेरी-सी घाटीकी ओर। उसका अपना सीना धक्-धक् करने लगा। पुस्तक उसके हाथसे गिर गयी और उसकी दृष्टि सुडौल कूल्हों, पतली कमर और वक्षके पहाड़ोंके मध्य उस घाटीपर छिछलती हुई भाभीके मुखपर चली गयी—भाभी निस्पन्द, निष्प्राण, अचेत-सी पड़ी थी। उसके ओंठ सूखे हुए थे और उनकी पपड़ियोंमें आड़ी लकीरें पड़ी थीं।...वहीं, उन्हीं लकीरोंपर उसकी निगाहें जम गयीं और उसने चाहा कि इन प्यासे ओठोंको चूम ले। इस जोरसे चूम ले कि इन लकीरोंमें खून सिमट आये, और वह झुका...

उस समय भाभीने आंखें खोल दीं। वही प्यासी-प्यासी, उदास-उदास, अतृप्त कामना-भरी आंखें। उन्हींमें देखता हुआ, वह और झुका...

लेकिन वह रुक गया। वे लकीरें उसके सामने लोहेकी रक्तरञ्जित कीलें बन गयीं और उसने देखा कि वे कीलें चट्टानको छेदनेका प्रयास कर रही हैं।

वह रुक गया। रुका और उठा। भाभीके ऊपरसे गुजरता हुआ, दरवाजा खोलकर वह निकल गया। तेज-तेज चलने लगा और फिर भागने लगा। जैसे वह किसी हिंस्र पशुसे, किसी विश्वग्राहिनी ज्वालासे डरकर भाग रहा हो...नङ्गे सिर...नङ्गे पांव...रातकी निस्तब्धताको भङ्ग करता हुआ... मटमैली चांदनीको चीरता हुआ।

ठण्डक काफ़ी थी और हवा चीलके वृक्षोंसे टकराकर चीख़ रही थी।

सुबहने उसे एक सख़्त चट्टानपर बैठे पाया। उसके घुटनों तक मिट्टी चढ़ गयी थी। तलवोंमें छाले पड़ गये थे। एक पांवमें ठोकर लग जानेसे नाख़ून थोड़ा-सा उड़ गया था। कदाचित् थक-हारकर वह उस चट्टानपर बैठ गया था, कदाचित् ऊंघ भी गया था।

उसने आंखें खोलीं। दूर—दृष्टिकी सीमाके अन्तिम विन्दुपर पहाड़ियां छोटी होती-होती मैदानमें मिल गयी थीं और वहां 'सुआं' चमक रही थी, जो इन पहाड़ियोंका विनम्र अर्घ्य सागरके हुज़ूरमें ले जाती थी और पार्श्व-भूमिमें होशियारपुरके मकानोंकी धुंधली-सी छतें वृक्षोंमें दिखाई दे रही थीं। उसने अपना दायां हाथ शुष्क, बिखरे हुए बालोंपर फेरा और टांग पसार ली। उसका घुटना दर्द करने लगा और अंगूठेकी टीस भी जाग उठी। एक चकित-सी दृष्टि उसने चारों ओर डाली, जैसे वह इन पहाड़ि-योंको, चीलके विटपोंसे आच्छादित इन पहाड़ियोंको नये सिरेसे देख रहा हो।

उसने बायां हाथ पसारा। एक नन्हा–सा पौधा उसके हाथके नीचे मसलता–मसलता रह गया।

शङ्करने देखा—दृढ़ चट्टानकी एक सिलवटपर ऊपरसे कुछ मिट्टी आ गिरी थी। हवामें उड़ताउड़ता कोई बीज भी आ पड़ा था। नमीके कारण यह नन्हा–सा पौधा भी फूट पड़ा था। लेकिन चट्टान तो चट्टान थी...पत्थर...उसकी जड़ोंको फैलनेके लिए तनिक–सी जगह भी तो न देना चाहती थी और वह पौधा मुरझा रहा था और उसके पीले मुरझाये पत्ते कुम्हला रहे थे।

शङ्कर उठा और हैरान निगाहोंसे दोनोंको देखने लगा और फिर वहीं खड़े-खड़े उस चट्टानपर उसे किसी और चट्टानकी रेखायें बनती हुई दिखाई दीं और उस पौधेके स्थानपर एक और दिन-प्रतिदिन मुरझाता, कुम्हलाता पौधा उसकी आंखोंमें फिर गया।

नाज़िया

पहलेकी तरह शनिकीरातको खान मुहम्मद कबीरके दीवानखानेपर जमाव हुआ—शुष्क क्लर्कोंके नीरस जीवनमें यही रात होती है, जिसमें वे जो चाहें कर सकते हैं। ताश खेल सकते हैं, शतरञ्जकी बाजी लगा सकते हैं, सिनेमा या थियेटर जा सकते हैं, नहीं तो बारह घण्टे सो तो सकते हैं। इतवारको छुट्टी होती है। समयपर उठने और शीघ्र-शीघ्र तैयार होकर दफ़्तर जानेकी जल्दी नहीं होती, इसलिए अपनी-अपनी रुचिके अनुसार जी बहलानेका सामान कर लिया जाता है।

बस्ती ग़जांके चन्द खुशदिल क्लर्क इस रात खान मुहम्मद कबीरके दीवानखानेमें इकट्ठे होते थे। प्रत्येक शनिवारको कोई न कोई नया प्रोग्राम हुआ करता। उस रोज चायके दौरानमें कुछ इस तरहकी बात चली कि सबने अपने जीवनकी एक न एक महत्त्वपूर्ण घटना सुनानी आरम्भ कर दी। हसरत अभी तक चुपचाप चायकी प्याली मुँहसे लगाये चुस्की ले रहा था। शायद वह औरोंकी कथायें न सुनकर अपने ही अतीतकी किसी कहानी में उलझ गया था। अपनी बारी आनेपर प्यालेकी शेष चाय एक ही घूंटमें खत्मकरके उसने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और आरामकुर्सीपर पीछेको लेट गया। कुछमिनट चुप रहकर वह उठा और बोला—

"शायद आपमेंसे सबने अपने जीवनको किसी न किसी ऐसी घटनासे सम्बन्धित करनेका प्रयास किया है, जो वास्तविकतासे बहुत दूर है; किन्तु मैं आपको अपने जीवनकी एक सच्ची घटना सुनाऊंगा, जो एक घटना तो है, किन्तु वह, जिसने मेरे जीवनके रुख़को ही पलट दिया।"

यह कहकर उसने अपनी जेबसे एक मैला-सा मुड़ा-तुड़ा काग़ज़ निकाला और उसे अपनी दोनों उंगलियोंमें पकड़कर हिलाते हुए बोला—

"यह नज्जियाका पत्र है जनाब—उस देशकी रहनेवाली नज्जियाका, जो अब स्वप्नोंके अतिरिक्त कहीं दिखाई नहीं देती। वह देश, जहां दिल उड़कर पहुँचता है, मस्तिष्क कल्पना-लोकमें जिसकी सैर करता है; किन्तु पांव पङ्खहीन हैं, वहां उड़कर नहीं पहुँच सकते। यह इराक़की बात है—उस इराक़की, जहां रोमान्स प्रातःसमीरणकी भाँति बिखरा हुआ है, जहां दिन उन्माद लाते हैं, रातें जादू फूंकतीं हैं, और चाँदकी चाँदनीमें जिसके किसी निर्जन टीलेपर बैठा मनुष्य अपने आपको दूर--बहुत दूर एक मनोमुग्धकारी संसारमें खोया महसूस करता है।"

हसरत कुर्सीपर आगेको झुका और कुछ क्षण चुप रहने के बाद बोला—

"नज्जियाका जन्म तो भारत में ही हुआ था; किन्तु वह उन दिनों बग़दादमें ही रहती थी। वह कैसे वहां पहुंची, यह मैं नहीं जानता। मुझे तो इतना ही मालूम है कि उसके साथ मैंने कुछ देर उस दुनियाकी सैर की, जिसे मुहब्बतकी दुनिया कहते हैं और वह सैर मैं आज तक नहीं भुला सका।

"लामके खत्म होनेमें कुछ देर थी। सुलहकी प्रसन्नतामें अफ़सर भी कुछ बेपरवा हो गये थे। जिस तरह परीक्षा समाप्त होनेपर छात्र कुछ देरके लिए परिश्रम करना छोड़ देते हैं और उनपर कुछ सुस्ती-सी छा जाती है, उसी तरह सेनामें भी प्रमादकी लहर-सी दौड़ गयी थी। माहानी परीक्षा अभी अभी समाप्त हो चुकी थी। सिपाही थक गए थे। अनुशासनमें कमी आ गयी हो, यह बात न थी; पर युद्ध और संघर्षमें जो चुस्ती आ जाती है, उसका पता न था और सेनाके नियमोंकी रस्सी भी किसी क़दर ढीली हो गयी थी।

इन्हीं दिनों की बात है। सन्ध्याका समय था। अंधेरी गलियोंमें लैम्प रोशन हो गये थे। मेरे कुछ साथी मुझपर व्यंग्यके तीर छोड़ रहे थे। किन्तु मैं उनके तानोंसे बेपरवाह उस छोटे-से थियेटरकी ओर जा रहा था, जहां नज्जिया अपने नृत्यसे दर्शकोंको मन्त्र-मुग्ध किया करती थी। अगर कहीं इस

प्रांत में खासकर अपने नगरमें, रातके समय मैं उस बाज़ारकी ओर जाता, जहां नृत्यसे फ़र्श थरथरा जाते हैं और मीठे मादक गीतोंसे वायुमें कम्पन पैदा हो जाता है, तो मेरे साथी, मेरे रिश्ते-नातेदार मुझे तानोंका निशाना बना देते; लेकिन वहां कोई रुकावट न थी और मैं जमीलके साथ जा रहा था, उसकी एक तान, दिलमें उथल-पुथल मचा देनेवाली एक तान सुनने!"

हसरतने चायका दूसरा प्याला बनाया और एक घूंट पीकर फिर बोला--

"उसने अपने जीवनके अधिकांश दिन इराक़में ही बिताये थे। उत्पन्न वह भारतमेंही हुई थी और कुछ दिन यहां रही भी थी, इसलिए उसे स्वभावतया भारतीय गानों और नृत्यसे दिलचस्पी थी। भारतीय सङ्गीतपर उसका उतना ही अधिकार था, जितना अरबी सङ्गीत तथा नृत्यपर। दोनों कलाओंमें वह निपुण थी। वह अरब कैसे गयी और वहांसे बग़दाद कैसे पहुंची यह एक लम्बी कहानी है; किन्तु वह क्यों वहां आयी, इसका एक उत्तर मेरे पास है और वह यह, कि शायद उसे मेरे मस्तिष्कसे एक ग़लत ख़याल मिटाना था।

यह कह कर हसरतने एक लंबी सांस ली और फिर बोला—

"मैं उस छोटे-से थियेटरमें दाख़िल हुआ। विचित्र प्रकारका थियेटर था। मैं अगली पंक्तिमें बैठा था। वह धीरे-धीरे स्टेजपर आयी। हुस्न, ख़ूबसूरती, आकर्षणकी एक जीवित मूर्ति। मैं उसकी आंखोंसे आंख न मिला सका। निगाहें थीं कि बिजलियां गिरती थीं। अपनी जगह बैठा चुपचाप, अनिमेष दृगोंसे, उसके गोरे-गोरे पांव और लाल-लाल एड़ियोंको देखता रहा, जो तालके साथ स्टेजपर थिरकती थीं। फिर कब नग़मे फ़िज़ामें गूंज उठे, कब वह मनोमुग्धकारी तान समाप्त हुई, मुझे कुछ ख़बर नहीं। हां, इतना याद है कि बीचमें एक नाज़ुकसी पुतली, मूर्तिमान इन्द्र-धनुष-सी कोई नारी मेरी आंखोंके सामने नाचती रही।

"जाती बार फिर हमारी निगाहें चार हुईं। मेरे साथ उस दृष्टिने-उस प्रलयकारी दृष्टिने-क्या किया, कह नहीं सकता। इतना जानता हूं कि एक तीर था, जो दिलकी गहराइयोंमें डूबकर रह गया। मैं और जमील चले

आये। लेकिन दो नहीं, तीन। जमीलके बारेमें मैं कुछ नहीं कह सकता। हां, मेरे साथ, उसकी, नज्मियाकी तसवीर अवश्य आयी।"

"इसके बाद हसरतने तनिक आवेशसे कहना आरम्भ किया—

"उस दिनके बाद, जनाब, मैं प्रतिदिन वहां जाता। रातकी तारीकीमें छिपकर चला जाता। अफ़सर मुझसे प्रसन्न थे। और यदि अप्रसन्न भी होते, यदि उन्हें पता भी लग जाता, तो मुझे कोर्ट मार्शल या बर्खास्त होनेका डर नहीं था। मैं प्रतिदिन वहां जाता। थियेटरमें नहीं, वह मुझसे अपने मकान पर, अपने खास कमरेमें मिलती, जहां धरतीपर सुन्दर क़ालीन बिछे होते; दीवारों-पर बहुमूल्य पर्दे लगे होते और जहां रोशनदानोंसे आनेवाली हवा कमरेकी खुशबूसे सुगन्धित होकर झूम उठती। हम दोनों गई रात तक बैठे रहते और न जानें क्या-क्या बातें करते। उसकी बातें मधु-सी मीठी, मदिरा-सी मादक और सरिता-सी बहनेवाली होतीं। मुझे यह सब कुछ स्वप्न जैसा लगता। किन्तु यह स्वप्न नहीं था, सब कुछ सत्य था। उसे मुझसे मुहब्बत थी। मेरे ही कारण उसने नृत्यसे हाथ खींच लिया था,। थियटरको प्रायः बन्द ही कर दिया था। उसने भी एक दिन यह बात मुझसे कही और मैं स्वयं भी इसे जानता था।"

"और फिर एक शामका जिक्र है," हसरतने अपनी आवाजको धीमा करते हुए कहा—"मैं नज्मियाके साथ दजला नदीकी ओर जा रहा था। नदी नगर के दरम्यान होकर बहती है, किन्तु नज्मियाका मकान उससे बहुत दूर था और हम वहां सैरको आया करते थे। सेनायें वापस भारत आ रही थीं। मेरी बारी भी शीघ्र आनेवाली थी। इन अन्तिम दिनोंमें मैं रात-भर उसके साथ रहता था। संध्यासे ही वह मेरी प्रतीक्षा किया करती। मैं जाता, उसकी आंखें चमक उठतीं। मैं नहीं कह सकता उसे क्यों मुझसे मुहब्बत थी, क्यों मुझसे प्रेम था, क्यों उसने मेरे लिए नृत्य छोड़ दिया था, क्यों वह कुछ बेपरवा-सी रहने लगी थी। इतना कह सकता हूं कि मेरे साथ बातें करनेमें उसे भी आनन्द आता। वह भी बातें करते-करते न थकती थी। चाँदनी रात थी और हम नदीकी ओर जा रहे थे।"

हसरतने प्यालेमें मीठा डालकर, क्योंकि वह पहले मीठा डालना भूल गया था, उसे हिलाते हुए कहा, "चांदनी रात थी और हम नदीकी ओर जा रहे थे। हम दोनोंके दिलोंमें तूफ़ान हिलोरें ले रहे थे; किन्तु हममेंसे कोई भी उन्हें शब्दोंमें व्यक्त न कर पाता था।

"हमारे पांव रेतमें धँस रहे थे और वहां निशान बनते चले जाते थे। मनुष्य के हृदयमें भी घटनायें अपने अदृश्य पैरोंसे कुछ चिह्न अङ्कित कर देती हैं। दोनोंमें अन्तर केवल इतना होता है कि रेतमें बने हुए चिह्न मिट जाते हैं और हृदय के निशान आयु-पर्यन्त नहीं मिटते। हम चले जा रहे थे, दायीं ओर चाँद चमक रहा था और सामने दजला नदी सरसराती हुई चली जा रही थी।

मैंने कहा—"नज्जिया, क्या ही अच्छा हो, यदि हम आयु-भर इसी तरह चलते रहें।"

"और हमारे शरीरमें कभी थकावट न आये, यह चांद इसी तरह स्थिर चमकता रहे, और यह नदी इतना ही दूर होती चली जाय।" उसने मुस्कराते हुए सरलतासे कहा और एक पतली-सी लताकी भांति लहराती हुई मेरी ओर कुछ झुक-सी गयी।

इसके बाद हम खामोश हो गये और चुपचाप नदीके किनारे-किनारे चलने लगे। नगर बहुत पीछे रह गया था। वह नदीके किनारे एक ऊंची-सी जगहपर बैठ गयी। मैं भी उसके दायीं ओर बैठ गया। कुछ क्षण तक निस्तब्धता छायी रही, केवल ठण्डी वायुके झोंके उसके बालोंसे खेलते रहे। फिर उसने सहसा मेरा कन्धा थपथपाते हुए कहा—"हसरत, तुमने मुझपर जादू कर दिया है।"

"और तुमने मुझपर नज्जिया।" मैंने उसकी आंखोंमें आंखें डालते हुए कहा। हम देर तक एक दूसरेको देखते रहे और मुसकराते रहे। फिर न जाने कैसे हमने बातें शुरू कर दीं और दीन-दुनियाको भूलकर उन्हींमें निमग्न हो गये। इस बीचमें वह कई बार मुस्करायी, कई बार हँसी। उसकी वह हँसी शायद सारी आयु न भूल सकूं। वह मीठी, मादक और मासूम हँसी मुझे फिर देखनी नसीब नहीं हुई।

हसरतने फिर तनिक आवेशसे कहा—"तुम कहोगे, नर्तकी और मासूम

हँसी !" मैं कहूंगा, हां ! हँसती वह पहले भी थी; किन्तु पहले उसके कहक़होंमें बनावट होती, कृत्रिमता होती, यह सरलता और मासूमियत नहीं।

बातों-बातोंमें उसने अपने सिरको मेरे कन्धेपर रख दिया। मैंने अपनी भुजा उसके गलेमें डाल दी। उसने अपने सिरसे मेरे कन्धेको तनिक-सा दबाते हुए कहा----"हसरत, तुम मुझे भूल तो न जाओगे ?"

"क्या तुम मेरे साथ न चलोगी, नज्जिया ?" मैंने चौंककर पूछा।

"यदि ले चलोगे।"

"ले क्यों न चलूंगा नज्जिया ! तुम मेरे साथ चलना, अपने देशमें, अपने हिन्दुस्तानमें, जहां तुमने जन्म लिया है। तुम्हें उसकी याद नहीं आती नज्जिया ?"

उसने हसरत-भरे स्वरमें कहा--" आती है हसरत, किन्तु मैं वहां कैसे जा सकती हूं ? क्या भारतका सभ्य समाज मुझे अपना लेगा ? कहां रहूंगी मैं भारतमें जाकर ?"

मैंने कहा-"मेरे पास रहना-मेरी आंखोंका तारा बनकर, मेरे दिलके मन्दिरकी देवी बनकर !

एक क्षणके लिए हमारे सिर एक-दूसरेसे जा लगे। वह इसी तरह मेरे कन्धेका सहारा लिये बैठी रही, जैसे वह इन्सान न थी, सङ्गमरमरकी मूर्ति थी।

हम उठे, वापस घरको चले। रास्ते-भर उसकी आंखें उल्लास तथा विषादके साथ खेलती रहीं। कभी उनमें प्रसन्नता झलक उठती और कभी गहरा अवसाद छा जाता। कभी वह मुझसे भारतके सम्बन्धमें प्रश्न पूछती और कभी चुप हो जाती। प्रसन्न वह शायद इसलिए थी कि वह मेरे साथ भारत आ रही थी। उसके हृदयमें हिन्दुस्तान जानेकी बड़ी इच्छा थी; पर वह इस दशामें यहां न आना चाहती थी कि लोग उससे नफ़रत करें। उपेक्षित बनकर उसे यहां रहना स्वीकार न था। उसकी इच्छा थी कि नर्तकी होते हुए भी लोग उसका आदर करें। किन्तु हिन्दुस्तानमें यह बात कहां ? इसीलिए उसका स्वाभिमान उसे यहां आनेसे रोकता था। अब जब मैंने उसे अपने साथ लानेका प्रण किया था वह प्रसन्न हो उठी थी।

पर व्यथित वह क्यों थी, इसका कारण मुझे मालूम न हो सका। मैंने

उसे प्रसन्न रखनेकी कोशिश की। वह हँसी भी, उसने मेरी बातोंपर क़हक़हे भी लगाये; किन्तु मैंने महसूस किया, जैसे इस हँसी, इन क़हक़होंके पीछे दुख कहीं छिपा बैठा है। जाते और आते समयकी हँसीमें काफ़ी अन्तर था, यह मैं भली भाँति समझ रहा था।

मैं अपने कैम्पमें आ गया। रात-भर नींद न आयी। हवामें क़िले बनाते-बनाते रात बीत गयी। मेरी कल्पनाओं ने कई बार यहां बस्तीके बाहर हरे-भरे खेतोंमें शीश-महल बनाये और उनमें उसे लाकर रखा। कई बार उसके साथ अद्भुत स्थानोंकी सैर की। कल्पना लोक की सैर करते करते सबेरा हो गया। उठा तो सरमें हलका-हलका दर्द था। आंखें चढ़ी हुई थीं; किन्तु हृदयमें उल्लासका समुद्र हिलोरें ले रहा था। मैंने नहा-धोकर कपड़े बदले कि जमील आ गया। हम दोनों उस दिन भारतकी ओर आनेवाले सैनिकोंको विदा देने गये। उसी दिन हमारी वापसीकी भी आज्ञा आ गयी। अवसर मिलते ही भागा-भागा मैं नज्जियाके घर गया। वह बैठी थी। आशाके विपरीत उसका चेहरा कुछ उतरा हुआ था; किन्तु शीघ्र ही उसपर पहलेका-सा उल्लास छा गया। हमने प्रोग्राम बनाया। मैं अपनी सेनाके साथ आऊंगा और वह अपनी दासीके साथ। बम्बई जाकर हम कुछ देर वहीं रहेंगे और फिर शेष जीवन यहीं बस्तीमें आकर व्यतीत करेंगे। कहीं एकान्तमें एक बाटिका लगा लेंगे और शान्तिपूर्वक वहां निवास करेंगे। कोई दो घण्टे हम भविष्यकी सुखद कल्पनाओंमें निमग्न रहे। जब मैं आने लगा, तो उसने मेरा कन्धा दबाकर कहा--"हसरत तुम्हारे घरवाले पूछेंगे--यह कौन है, तो क्या जवाब दोगे?"

"क्या जवाब दूंगा!" मैंने कहा, "कहूंगा यह बग़दाद के ऊंचे घराने से सम्बन्ध रखनेवाली हसीनोंकी सरताज नज्जिया है।"

वह मुसकरायी; किन्तु उसकी मुसकराहट विवशताका पहलू लिये थी, जिसमें व्यंग्य भी किसी न किसी कोनेसे झांक रहा था। मैं उस समय इसका कारण न समझ सका, चला आया।

दूसरी सुबह इससे पहले कि मैं नज्जियाके घरकी ओर जाता, मुझे यह पत्र मिला।

हमने देखा, हसरतका मुख पीला हो गया था। उसने अंगुलियोंमें पकड़े हुए काग़ज़को धीरे-धीरे हिलाया और बोलाः–

" मैंने पढ़ा, लिखा था–

हसरत, तुम भी मुझे इस हैसियतसे भारत नहीं ले जाना चाहते। तुम्हारे हृदयमें भी एक ऊंचे घराने की युवतीसे विवाह करनेकी आकांक्षा है, एक नर्तकी के लिए वहां कोई स्थान नहीं; तुम भी मेरे रूपसे प्रेम करते हो, मेरी कलासे नहीं; इसलिए विदा। तुम उत्तरमें खड़े हो, तो मैं दक्षिणमें; तुम उंचे घरानेका चिराग़ हो, मैं एक छोटे वंशकी शमअ। हम-तुममें आकाश–पातालका अन्तर है। इस मुहब्बतको जीवनकी एक साधारण घटना समझकर भूल जाना। —नज्मिया "

काग़ज़ लपेटकर जेबमें रखते हुए हसरतने लम्बी सांस ली और बोला–

" मैं उस दिन सेनाके साथ न आ सका। रातको छिपकर उस ओर गया। उसके थियेटरमें—देरसे छोड़े हुए थियेटरमें ख़ूब रौनक थी। वह नाच रही थी, गा रही थी, शायद इस घटनाको भुलानेका प्रयास कर रही थी। "

" मैं अन्दर नहीं गया। " हसरतने अत्यन्त धीमी आवाजमें कहा– " दजला के किनारे वहां जाकर रेतपर लोटा किया, जहां चांदनी रातमें हमने प्रेमके कुछ क्षण व्यतीत किये थे। "

माया

"यह भी कोई बात है"—लाला तेजभान बोले, "मैं एक युवती से केवल दस मिनिट के लिए मिला, लेकिन आज तक भी उसकी याद को दिल से नहीं भुला सका, कौन कह सकता है कि मैं उससे प्रेम नहीं करता ? तो फिर यह कहाँ आवश्यक है कि मुहब्बत तभी बढ़ेगी, जब मेल-जोल बढ़ेगा। उन थोड़े से क्षणों की स्मृति को मैं आज भी निर्धनों के धन की भाँति अपने सीने में छिपाये हुये हूँ और कौन जानता है कि वह भी ऐसा न करती होगी !"

वसन्त बोले—"केवल दस मिनिट ?"

"बल्कि इससे भी कुछ कम।" लालाजी ने कहा, "यह १९२९ ई० के दिसम्बर की बात है। उन दिनों लाहौर में कॉंग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा था। खूब चहल-पहल रहती थी। तुम्हें याद होगा, अधिवेशन के दो-तीन दिन पहले वर्षा हुई थी। बस, उसी दिन का यह जिक्र है। मेरी कार मिन्टो-पार्कवाली सड़क पर हवा से बातें करती हुई जा रही थी कि पश्चिम से गहरे काले बादल घिर आये और क्षण भर में जोर का मेंह बरसने लगा। मैं सीट पर पीछे की ओर लेटा हुआ न जाने क्या सोच रहा था कि एकदम झट से कार रुक गयी, मैं आगे की ओर गिरा, तनिक बेज़ारी से ड्राइवर की ओर देखते हुए मैंने कहा—"क्या बात है ?"

इससे पहले कि वह उत्तर दे, मेरी बाईं ओर की खिड़की के पास एक सुन्दर युवती आ खड़ी हुई। मैंने जल्दी से शीशा उतारा। शायद ड्राइवर ने उसी के इशारे पर कार खड़ी कर दी थी।

"क्या आप मुझे कॉंग्रेस-नगर तक पहुँचाने का कष्ट करेंगे ? वर्षा

होने लगी है और यहाँ कहीं सिर छिपाने को भी जगह नहीं, यदि आप उधर ही जा रहे हों, तो मुझे भी साथ ले चलिए, कृपा होगी।"

मैंने उत्तर देने के बदले दरवाज़ा खोल दिया। वह निस्संकोच मेरी बग़ल में आ बैठी और शीशा चढ़ाते हुए बोली—"आपने बड़ी कृपा की, वर्षा आयी भी तो झपाटे के साथ!"

मुझे जाना तो माल पर था, पर मैंने कहा,—"कोई बात नहीं, मैं भी उधर ही जा रहा हूँ!" वह मुसकराई—मीठी, मादक मुसकराहट! मैंने उसकी ओर देखा, यद्यपि आँख भर कर न देख सका, परन्तु इतना अवश्य मालूम हो गया कि वह किसी उच्च घराने की लड़की है, मोटरों में बैठना जानती है, काफ़ी पढ़ी हुई और सुशिक्षित है और कॉंग्रेस देखने आयी है, अभी रञ्जीतसिंह की समाधि देखने गयी थी, उसकी सहेलियाँ तो वहीं रह गयीं, लेकिन वह कार्य-वश लौट आयी और अभी यहाँ तक ही पहुँची थी कि वर्षा आ गयी।

मैंने उसे कॉंग्रेस-नगर के दरवाज़े पर उतार दिया। अब वर्षा नहीं हो रही थी, झपाटा ही तो था जो कुछ क्षण के लिए आया और चला गया, मैं भी उसके पीछे उतर गया। उसने कहा,—"मैं किस प्रकार आपको धन्यवाद दूँ? आप कार न खड़ी करते तो मेरा क्या हाल होता?"

मैंने ज़रा हँस कर कहा, "नहीं नहीं, कोई ऐसी बात नहीं, मुझे भी तो इधर ही आना था।"

"मैं आपका यह एहसान कभी न भूलूँगी" और 'नमस्ते' कह कर तेज़ीसे चली गयी। मैं खोया सा कार में आ बैठा। कुछ क्षण बेसुध सा बैठा रहा पर जब कार चलने लगी तो मैंने देखा जहाँ वह बैठी थी वहाँ कोने में एक सुन्दर रूमाल पड़ा है। "ठहरो!" मैंने चीख़ कर ड्राइवर से कहा, और खट से दरवाज़ा खोल कर उतरा, किन्तु वह दिखायी न दी। मैं कुछ क़दम आगे बढ़ा, न जाने वह कहाँ किस ओर मुड़ कर नज़रों से ओझल हो गयी थी। कुछ क्षण मैं चुपचाप खड़ा सोचता रहा फिर रूमाल को सावधानी से तह करके, आहिस्ता से दोनों हाथों में दबाये वापस आकर अपनी सीट पर बैठ गया। ड्राइवर ने दरवाज़ा बन्द

किया और जा कर कार स्टार्ट कर दी, तब एकान्त में मेरे दोनों हाथों में नरमी से दबा हुआ रूमाल धीरे–धीरे मेरे होंठों से आ लगा। कार तेजी से चलने लगी, काँग्रेस नगर, कोलाहल, चहल-पहल, भीड़-भाड़ सब दूर होते गये, मोटर, गाड़ियां, ताँगे, छकड़े, वृक्ष, उनके परे बने हुए मकान सब तेजी से गुजरते गये, और मेरे मकान के सामने आकर कार खट से रुकी और मैं अपनी इस तन्मयता से जागा।"

"यद्यपि इस घटना को आज सात वर्ष हो गये हैं।" लाला तेज-भान ने लम्बी साँस छोड़ कर कहा, "पर मैं उसकी याद अपने दिल से नहीं भुला सका। आज तक मैं महसूस करता रहा हूँ कि मैं उस लड़की से प्रेम करने लगा था।"

मैंने पूछा—"तो फिर तुम उससे नहीं मिले ?"

"जितने दिन काँग्रेस रही, मैं वहाँ जाता रहा, पर कदाचित् उसने फिर वह साड़ी ही नहीं पहनी या मैं चूँकि उसे पहली बार अच्छी तरह देखने का साहस न कर सका था, इसलिए यदि वह कहीं होगी भी तो मैं उसे नहीं पहचान सका।"

मैं हँसा। वसन्त बोले, "तुमने रूमाल की बात कही तो मुझे एक घटना याद आ गयी।"

हम उत्सुकता से कुर्सियों पर तनिक आगे को झुक गये। नौकर से मैंने ट्रे और चाय के खाली कप इत्यादि उठा ले जाने को कहा।

दिसम्बर का महीना था, काफ़ी सर्दी पड़ने लगी थी, उस दिन आकाश पर बादल भी गहरे छाये हुए थे, सामने खिड़कियों के शीशों से दूर तक छायी हुई काली घटा साफ़ दिखायी दे रही थी, कदाचित् बाहर वायु भी चल रही थी—ठंडी और तीर की भाँति चुभ जानेवाली; परन्तु कमरा गरम था, अंगीठी में आग जल रही थी।

वसन्त बोले,—"मेरी कथा सीधी–सी है, न तो उसका प्रारंभ ही इतना रोमेंटिक हुआ है, न अन्त, तुम सब जानते ही हो कि मैं शुरू से ही

कॉंग्रेसी हूँ। आज तो चाहे मैं प्रान्तीय धारा-सभा के लिए उम्मीदवार हूँ, पर लाहौर-कॉंग्रेस के अवसर पर एक तुच्छ स्वयं-सेवक था। हमारी ड्यूटियाँ बदलती रहती थीं और कई बार ऐसा अवसर आ जाता था कि स्वयं-सेविकाओं की और हमारी ड्यूटियाँ एक ही जगह लग जाती थीं। लेडी-वालंटियरों में मुझे एक से ज़रा दिलचस्पी हो गयी। गोरी, सुकुमार और चंचल-सी वह लड़की, मेरी आँखों में खुब गयी और मैं उससे बातें करने को अधीर हो उठा। दिन में कई बार हमारा सामना होता और वह एक बार मेरी ओर देख कर तेज़ी से निकल जाती पर बात करने का अवसर न मिलता। जब कॉंग्रेस के अधिवेशन की कारर्वाई बाक़ायदा आरम्भ हुई तो मैंने प्रयास कर के वहाँ-वहाँ ही ड्यूटी लेना शुरू कर दिया, जहाँ-जहाँ वह होती। एक दिन बातें करने का अवसर भी मिल गया। विषय-निर्धारणी-समिति की बैठक हो रही थी, पंडाल में केवल स्वयं-सेविकाओं की ही ड्यूटियाँ थीं। अन्दर किसी वालंटियर को भी न जाने दिया जाता था। उसकी ड्यूटी अन्दर के गेट पर थी। कारर्वाई आरम्भ हो गयी पर मुझे अन्दर जाने का कोई रास्ता न मिला। मैं बाहर खड़ा कितनी ही देर तक सोचता रहा। मेरे देखतेदेखते एक स्काउट पानी का गिलास लेकर अन्दर गया और पानी पिला कर आ गया। स्काउटों का काम नेताओं के भोजनालय तक ही परिमित था और वे स्काउट-कमिश्नर के मातहत काम करते थे, कांग्रेसी स्वयंसेवकों से उनका कोई सम्बन्ध न था, उसे पंडाल के अन्दर जाते और फिर आते देख कर मुझे भी तरकीब सूझ गयी। मै भोजनालय से छोटी-सी बाल्टी और गिलास ले आया, नल से उसमें थोड़ा-सा पानी भर लिया और दूर से भागता हुआ आया, गेट पर स्वयं-सेविकाओं की कप्तान खुद थीं। उनका ध्यान दूसरी ओर था। मैं तेज़ी से उनके पास से गुजरा, उन्होंने रोका, मैंने योंही एक ओर इशारा करते हुए कहा-"वे पानी माँग रहे हैं," और बिना रुके बढ़ गया। दिखाने के लिए एक-दो विज़िटरों को पानी पिलाने लगा। कप्तान महोदया दूसरे आनेवालों को चेक करने में व्यस्त हो गयीं।

इस बीच में उन देवीजी को भी प्यास लगी। उन्होंने मुसकरा कर पानी माँगा मैंने गिलास भर कर दे दिया। पीकर उन्होंने कहा-"धन्यवाद!"

मेरे चेहरे पर लाली दौड़ गयी और मैं उनकी ओर देखता रह गया। इन्टरवल में लोग बाहर जाने लगे। गेट–पास कम हो गये, कप्तान महोदया चिल्लायीं,—" कृपया कुछ पास लाइए, " मैं भाग कर उन देवीजी के पास गया, और कुछ हकलाते हुए मैंने गेट–पास माँगे।

वह मुसकरा दीं और धीरे से पास मेरी ओर बढ़ा दिये। पास लेते समय मेरा हाथ उसके हाथ से छू गया । मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे एक निमिष के लिए उसने पास अपने हाथ में रोक-रखे हों। मैं एक स्वर्गीय आनन्द से विभोर होकर पास ले आया। धन्यवाद देना भी भूल गया। पास गेट पर देकर मैं फिर उसके पास गया और तनिक समीप जाकर मैंने धीरे से कहा—" कप्तान महोदया आपको शत–शत धन्यवाद देती हैं।" वह हँस दी और मैं भी मुस्कराहट न रोक सका। धीरे से मैंने फिर कहा— " और मैं भी।"

" आपके धन्यवाद की जरूरत नहीं ", उसने मुँह फेर कर कहा। हम दोनों मुसकरा दिये।

इस प्रकार हमारा परिचय हुआ। और फिर हममें घनिष्ठता होती गयी, दिन भर में हम किसी न किसी भाँति बातें करने का समय निकाल ही लेते। कई बार हम एकान्त में मिले। उन दिनों की स्मृति आज भी दिल में एक टीस सी पैदा कर देती है। अधिवेशन के एक सप्ताह को गुजरते देर न लगी। मालूम भी न हुआ और दिन बीत गये। आखिर बिदाई का दिन आगया। उसे अपने देशको और मुझे अपने देश को जाना था। हम दोनों दूर रावी के किनारे मिले। सर्दियों में सूखी रावी जैसे अपना सुहाग लुटा कर वैधव्य के दुःख में लेटी पड़ी थी। संध्या का समय था, । मैंने कहा, " रानी तुम अपना पूरा नाम और पता तो बताओ, और नहीं तो अपनी कोई निशानी ही दे जाओ!"

वह विषाद से मुसकरायी। उसने कहा,–" कुमार, भूल जाओ, जीवन नश्वर है तो फिर प्रेम ही क्यों अमर रहे, यही क्यों स्थायी हो? अता–पता यह भी झूठी बातें हैं। कौन अता–पता लेकर आया है, और कौन अपना पता बता कर जायगा। समझ लेना, जीवन की एक बहती हुई सरिता एक

निमिष के लिए रुकी और फिर अपने प्रवाह में बहने लगी। यह कह कर उसने मुझे एक रूमाल दिया उस पर अंगरेजी अक्षरों में लिखा था "फ़ॉरगेट" (Forget)! दूर स्वयं-सेविकाओं के कैम्प से सीटी की आवाज आयी। उसके हिलते हुए अधरों से निकला—" भूल जाओ " और वह 'वन्दे!" कह कर चली गयी। मैं वहीं खड़ा रहा, जब वह नजरों से ओझल हो गयी तो मैंने धड़कते हुए दिल को रोक कर रूमाल को चूम लिया और फिर आँखों से टपकते हुए आँसुओं की दो बूँदों को पोंछ डाला।

यद्यपि उसने कहा था, " भूल जाओ " परन्तु क्या मैं भूल सका हूँ? यह कह कर वसन्तकुमार एक सूखी हँसी हँसे। लाला तेजभान ने कहा—वाह यार, भला मेरा 'रोमांस' इस 'ट्रेजेडी' के सामने क्या ठहरेगा।

शर्माजी पलंग पर कम्बल लिये बड़े ध्यान से कहानी सुन रहे थे। उनके मुख से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह भी कुछ कहना चाहते हैं पर कह नहीं पाते।

मैंने ज़रा हँसते हुए कहा—" क्यों शर्माजी, आपके पास भी कोई रूमाल की कहानी है?"

कुछ सकुचाते और कुछ मुसकराते हुए शर्माजी ने कहा, " भाई, कुछ समझो, मेरे साथ भी एक ऐसी ही घटना हुई और वह भी उसी अधिवेशन में और चाहे तुम सत्य न मानों पर उससे भी ख्याल का कुछ सम्बन्ध है।"

शर्माजी और प्रेम! हम सब जरा चौकन्ने होकर उनकी बात सुनने लगे। अंगीठी को तनिक चारपाई के नीचे सरका कर, कंधों तक ओढ़ कर, शर्माजी कहने लगेः—

" तुम जानते हो, हमारे लिए तो इस लीडरी ने जीवन नीरस बना रखा है। लोग लीडरों को तो पत्थर की मूर्ति देखना चाहते हैं। उनसे ऐसे चरित्र की आशा रखी जाती है जो देवताओं को भी दुर्लभ हो। पब्लिक-स्टेज पर आने और फिर सफलता पा कर उसे बनाये रखने के लिए दिल को

ताला लगा कर रखना आवश्यक है और मैंने ऐसा किया भी है। इतनी आयु हो गयी पर मैंने इसे क़ाबू में रखा है। मैंने इसे पत्थर बना लिया है, फिर भी ऐसे अवसर आजाते हैं जब यह मोम हो जाता है और अपने संयम को भूल जाता है।"

कॉंग्रेस का मुख्य अधिवेशन हो रहा था और मैं स्वागतकारिणी समिती के सदस्यों में बैठा था। जब मैंने देखा कि एक लड़की एक दो बार आयी और कभी इस नेता और कभी उस नेता के लिए कुछ लायी। मैं उसकी चपलता, उसकी चंचलता उसकी शेखी को देख कर कुछ मुग्ध सा हो गया। वह शायद स्वयं-सेविका थी और दूसरों की भाँति अपने काम में व्यस्त थी। परन्तु उसे क्या मालूम कि उसकी यह व्यस्तता दूसरों को कितना निमग्न किये देती है। जब वह चौथी बार आयी तो मैंने उसे बुलाया और उसे किसी स्वयंसेवक से पानी लाने के लिए कहने की प्रार्थना की। वह किसी दूसरे से कहने के बदले स्वयं पानी ले आयी। मैंने पानी पीते-पीते, उससे उसके नाम, कैम्प इत्यादि के संबंध में सब बातें पूछ लीं। वह गिलास लेकर मुसकराती हुई चली गयी। मैंने देखा कि उसकी मुसकराहट स्वाभाविक थी और वह अनजाने में ही दूसरों को लुभा रही थी। इसके बाद भी उस स्वयं-सेविका से मेरा साक्षात हुआ। जहाँ भी वह मिली उसने मुझे मुसकराकर नमस्कार किया। जिस रात पंडित जवाहरलाल ने पूर्ण स्वतंत्रता के आदर्श की घोषणा की उसके दूसरे दिन कप्तान महोदया ने हमें सब कैम्प दिखाये। हम उसके खेमे में भी गये। उस समय वह अपना अटैचीकेस खोल कर कुछ ढूंढ रही थी और उसके काढ़े हुए कुछ रूमाल दरी पर बिखर गये थे। हमारे दाख़िल होते ही उसने नमस्कार किया। मैंने पूछा—"यह रूमाल तुम्हारे ही निकाले हुए हैं?"

"जी"—उसने सिर हिलाते हुए कहा।

मैंने एक रूमाल उठा लिया, उसके एक कोने में लिखा हुआ था—'माया'। मैंने उसे तह करके जेब में रखते हुए कहा—"यह तो हमें दे दो।"

"आप ले लीजिए।"

और हम बाहर आ गये। मेरे साथी नेता ने मेरे कंधे को थपथपाते हुए कहा—"क्यों भई!" पर मैं उस समय किसी राजनीतिक विषय पर किसी दूसरे महानुभाव से बड़े जोशोख़रोश से बातें कर रहा था।

घर आकार मैंने उसे फिर खोला, उस समय पहली बार मैंने चाहा—काश मैं लीडर न होता।

शर्माजी की कहानी के बाद कुछ क्षण के लिए कमरे में निस्तब्धता छा गयी। आखिर मैंने इस मौन को तोड़ते हुए कहा—"तो उसका नाम 'माया' था?'

"देख लो साफ़ लिखा है"—शर्माजी ने रूमाल निकाल कर दिखाया।

एक क्षणिक आवेश के मातहत लाला तेजभान और वसन्तकुमार ने भी रूमाल निकाले। उन दोनों के कोनों पर भी बारीक सा 'मा' बना हुआ था।

उन तीनों नेताओं ने कनखियों से एक दूसरे को देखा और फिर मेरी ओर देख कर मुसकरा दिये।

*

बद्री

जिस प्रकार वर्षा का पहला छींटा पड़ते ही पहाड़ी नालों में जीवन जाग उठता है और वे उत्फुल्ल होकर बह निकलते हैं, उसी भाँति शिमला का मौसम शुरू होते ही पहाड़ी पगडंडियों में जान पड़ जाती है। पहाड़ी लोग पुरानी पगडंडियों को उनकी हस्ती वापस देते, नई लीकें निकालते, शिमला की आबादी बढ़ाने लगते हैं। इन दिनों शिमले पर यौवन आ जाता है, शिशिर के हिम से सिकुड़ा हुआ शिमला अप्रैल-मई की जीवनदायिनी धूप से खिल उठता है। परन्तु जहाँ इस मौसम में शिमले में उल्लास खेलता है। वहाँ पहाड़ी देहात में उदासी छा जाती है। पहाड़ के युवक रोटी कमाने की धुन में शिमले को चल पड़ते हैं, पिता-पुत्र, भाई-बहन, प्रियतम-प्रेयसी एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। देहात की रूह इनके साथ ही चली जाती है, शिमले का जीवन उनकी मृत्यु बन जाता है।

अप्रैल का शुरू था। मैदान की गर्मियों से बचने के लिए शिमले के ठंडे और मनोमुग्धकारी वातावरण में पनाह लेनेवाले सरकारी दफ़्तरों का आगमन आरम्भ हो गया था। चारों ओर जीवन के आसार दिखाई देने लगे थे, मानो मृतक में फिर से जान पड़ गई हो।

शोली के ग़रीब पहाड़ी भी अपने सम्बन्धियों से जुदा होकर आगामी शीत के लिए कुछ धनोपार्जन करने जा रहे थे, लेकिन अकेले, शिमले में कुटुम्ब कहाँ साथ जा सकता है? वहाँ का किराया ही इस बात की आज्ञा नहीं देता। पुरुष तो ख़ैर कहीं पड़कर ही काट लेंगे। पर स्त्रियाँ और बच्चे! उनके लिए तो घर चाहिए। इसीलिए सब भरे दिलों के साथ जुदा हो रहे थे। बाप अपने बच्चों को हँस हँसकर प्यार करता था, पर उसकी आँखों में

आँसू छलक रहे थे; पति पत्नी से मुसकराता हुआ विदा ले रहा था, पर सीने पर पत्थर रखे हुए था, किन्तु दूसरी ओर यह हाल न था, वहां विषाद में भी प्रसन्नता की एक हलकी सी रेखा विद्यमान थी। स्त्रियाँ रोती थीं, तो भी प्रसन्न थीं कि उनके पुरुष उनके लिए ही सुख का सामान जुटाने जा रहे हैं। पहाड़ी युवतियों की आँखों से आँसू प्रवाहित थे, पर दिल खुश थे कि यह कुछ दिनों की जुदाई स्थायी प्रसन्नता साथ लायेगी। उनके प्रेमी इतना धन जमा कर लेंगे कि उनके मा-बाप से उन्हें माँग सकें। बच्चो भी मचलना चाहते थे, रोने के लिए उतावले हो रहे थे; पर ओंठों को सिये हुए चुप थे, क्योंकि यदि वे रोयेंगे तो उनके पिता उनके लिए खिलौने न लायेंगे, मिठाई न लाएँगे।

झोली ख़ाली हो रहा था। कल बिरजू गया, आज पिरथू गया। सब जा रहे थे। केवल वे ही घर पर थे जिनके शरीर में मेहनत-मजदूरी करने की शक्ति न रह गई थी, या वे जिनकी घर पर आवश्यकता थी। नहीं तो सब पहले पहले अच्छी जगह प्राप्त करने के विचार से भागे जा रहे थे। केवल बदरी अभी तक पहाड़ी पगडण्डियों पर ही भटकता दिखाई देता था। या नहीं गया था काशी। वह भी अभी तक गाँव में ही मारा मारा फिर रहा था।

अपने रिश्तेदारों की नजरों में वे दोनों बेकार घूम रहे थे। परंतु वे बेकार न थे, मुहब्बत के मैदान में घोड़े दौड़ा रहे थे। गत वर्ष बदरी बाजी ले गया था और अब की काशी।

बदरी घायल साँप की भाँति फुंकार रहा था और काशी विजयी योद्धा की भाँति जामे में फूला न समाता था। एक की दुनिया स्वर्ग थी, दूसरे की नरक!

[२]

ऊँची ऊँची पहाड़ियों के दामन में नाला शोर करता हुआ बह रहा था, मानों अपने देवताओं के चरण धोकर जन्म सफल कर रहा हो। इधर-उधर फैली हुई झोंपड़ियाँ खिड़कियों की आँखों से पानी की इस चंचल विनम्रता का नजारा कर रही थीं। सन्ध्या ने टेसू के रङ्ग का दुपट्टा ओढ़

लिया था और छोटी छोटी पहाड़ी गायें बस्तियों को लौट रही थीं। दूर किसी जगह कोई अल्प वयस्क लड़का अपनी बाँसुरी में इन पर्वतों की भाँति पुराना पहाड़ी युवती के वियोग का करुण राग अलाप रहा था, जिसका भाव कुछ यूं था :–

ऐ ब्राम्हण के लड़के शिमले न जा,
बेवफ़ा
मेरी हसरतें खाक़ हो जाएँगी बेवफ़ा,
शिमले न जा

सुर्जू नाले के किनारे पत्थर पर बैठी थी। उसका सिर झुककर घुटनों से लग गया था। अन्यमनस्कता में वह छोटी छोटी कंकरियाँ नाले में फेंक रही थी। बाँसुरी की मधुर और करुण ध्वनि उसके हृदय को द्रवित किये देती थी। धीरे धीरे अपने दिल में वह दुहरा रही थी–शिमले न जा, बेवफ़ा शिमले न जा।

काशी देर से झाड़ी में छिपा बैठा था, आज उसे भली भाँति देख लेना चाहता था, मुद्दत से प्यासी अपनी आँखों की प्यास बुझा लेना चाहता था। वह उसे अपनी आँखों में बिठा लेना चाहता, अपने दिल में छिपा लेना चाहता था, चाहे इसके बाद दिल की धड़कन ही बन्द हो जाय, आँखों की ज्योति ही बुझ जाय। आज सुर्जू एक बार सिर उठाये तो वह उसे जी भर कर देख ले। कौन जाने फिर यह मोहनी मूरत देखनी नसीब हो या नहीं, अभी दिल के अरमान निकाल ले, मन की साध पूरी कर ले। सुर्जू के सामने उसकी निगाहें झुक जाती थीं। स्वामी की उपस्थिति में चोरी कर भी कौन सकता है? छुपकर लूट लेना ही सम्भव है।

कितनी देर तक वह इसी प्रतीक्षा में बैठा रहा, लेकिन सुर्जू ने सिर न उठाया, काशी की हसरत न निकली। छोटी छोटी कंकरियाँ नाले में गिरती थीं और किसी आवाज़ के बिना जल-प्रवाह में विलीन हो जाती थीं–उन अशक्त मनुष्यों की भाँति जो किसी ध्वनि के बिना मृत्यु की बढ़िया में बहे चले जाते हैं।

आख़िर वह धीरे धीरे आगे बढ़ा और धड़कते हुए दिल के साथ

उसने झुककर अपना हाथ सुर्जू के कंधे पर रख दिया। दो बहते हुए झरने उसकी ओर उठे और उसकी अपनी आँखों से नदियाँ प्रवाहित हो गईं।

"तुम रो रही हो सुर्जू!".

'तुम रो रहे हो काशी!'

और दोनों चुप हो गये, केवल एक-दूसरे को देखते रहे। दूर कमसिन लड़का गा रहा था--कुछ इस तरह के भावों का गीत :—

ऐ ब्रम्हण के लड़के शिमले न जा
बेवफ़ा
परदेशमें जा कर तू मुझे भूल जायगा
बेवफ़ा
शिमले न जा

सुर्जू ने काशी की ओर देखा, मानों वह इसका जवाब पूछ रही हो। बाँसुरीवाले ने अपनी ऊँची, मीठी आवाज़ से फिर गीत अलापा—जिसका अर्थ यह था :—

ऐ ब्राह्मण की लड़की घबरा मत
मेरी जान
तुझे भूलना जी से गुज़र जाना है
मेरी जान
घबरा मत

काशी ने सुर्जू की ओर देखा। सूर्जू को अपने प्रश्नका उत्तर मिल गया।

और फिर दोनों अनायास लिपट गये, जुदा हुए और फिर लिपट गये और इसके बाद छोटे छोटे पौधों और झाड़ियों में उलझते, पत्थरों से ठोकरें खाते चोटी पर बसे हुए गाँव की ओर रवाना हो गये।

उस वक्त एक दूसरी झाड़ी से बदरी निकला—प्रतिशोध की साक्षात् मूर्ति। क्रोध के मारे उसकी आँखों में रक्त उबल आया था। वह, जिसे वह चिरकाल से अपने हृदय-मंदिर में बिठाये पूजा करता था—वह, जिसे वह पा ही लेता यदि यह काशी बीच मे न कूद पड़ता—वह आज उससे छिन गई थी। वह काशी की भाँति रूपवान् न सही, पर इतना कुरूप भी न था।

कभी सुर्जू की प्रेमभरी दृष्टि उसकी ओर भी उठा करती थी। परन्तु उसमें काशी का सा हौसला न था और प्रेम में साहस सफलता की पहली शर्त है। वह सुर्जू की मेहरबान निगाहों को देखता था, उसके हृदय में हलचल मच जाती थी, लेकिन वह चुप रहता था। फिर काशी आया। सुर्जू ने उसे भी प्रेम से देखा। काशी ने उन मुहब्बत-भरी निगाहों का जवाब दिया और फिर आँखों ही आँखों में आँखोंवाली को जीत लिया। अब कहीं काशी रास्ते से हट जाय, उस पर बिजली गिर पड़े, उसे मौत आ जाय, तो वह साहस से काम ले। वह सुर्जू को जता दे कि वह उससे किस हद तक प्रेम करता है, साबित कर दे कि वह उसके लिए आकाश के तारे तोड़ ला सकता है, पाताल की गहराइयों में ग़ोता लगा सकता है।

लेकिन काशी...काशी...' उसने उन्मत्तों की भाँति इधर-उधर देखा और दाँत पीसते हुए बढ़कर उस झाड़ी को उखाड़ फेंका जिसके पीछे काशी छिपा बैठा था और फिर अपने बलिष्ठ हाथों से उस पत्थर को ढकेल कर नाले में फेंकने का प्रयास करने लगा जो कुछ देर पहले उन दोनों का आसन था।

[३]

अभी सूरज उदय नहीं हुआ था, और सबेरे का हलका अँधेरा समस्त विश्व को अपने दामन में छिपाये हुए था। पूर्व में प्रकाश की किरनें इस प्रकार तारीकीमें मिल रही थीं जिस तरह विष के प्याले में अमृत। सबसे आगे काशी जा रहा था, उसके पीछे एक लड़का जोगू और फिर दस दस साल के दो कमसिन बच्चे थे। सब लम्बे लम्बे डग भरते जा रहे थे। आज शाम से पहले उन्हें शिमला पहुँच जाना है, इस विचार से सब तड़के ही शोली से चल पड़े थे। अँधेरे ही अँधेरे में उन्होंने चार कोस की मंज़िल मार ली थी। पहाड़ी पगडंडी, कभी खड्ड की गहराइयों में गुम हो जाती और कभी पहाड़ की बुलन्दियों पर पहुँच जाती। कभी ऐसा प्रतीत होता जैसे आकाश से पाताल में धँस गये और कभी ऐसा दिखाई देता, जैसे पाताल से आकाश पर जा पहुँचे और फिर अगणित मोड़ें। जाते जाते सामने पहाड़ आ जाता और पगडंडी भी उसके साथ ही मुड़ जाती। लेकिन पहाड़ की परिक्रमा के खत्म होते ही पहली पगडंडी साफ़ दिखाई देती और मालूम हो

जाता कि अभी कुछ ही ऊपर उठ पाये हैं, इतना चक्कर यों ही लगा, मुश्किल से चौथाई फ़र्लांग फ़ासिला भी तय न किया होगा।

" सावधानी से "—काशी ने अपने पीछे आनेवालों से कहा और उस पगडंडी पर हो लिया जो पहाड़ और खड्ड के दर्म्यान टँगी हुई मालूम होती थी। एक व्यक्ति ही कठिनाई से उस पर गुजर सकता था। सिर पर पहाड़, पैरों में खौफ़नाक गहरा खड्ड। यही पगडंडी जो दूर से सुन्दर-सी लकीर प्रतीत होती थी, पास आने पर मौत और जिन्दगी की हद दिखाई देती थी। इस खतरे के बावजूद यात्रियों को इसी पर से होकर शिमला जाना पड़ता था, दूसरे मार्ग से चार मील का अन्तर पड़ता था।

काशी के पीछे आनेवाले लड़के एक क्षण के लिए रुक गये। उन्होंने एक बार उस सिकुड़ी–सिमिटी लकीर जैसी पगडंडी पर निगाह डाली और फिर खड्ड को देखा, जो मुँह बाये इस तरह बैठा था, जैसे हर आनेवाले को निगल जायगा और पहाड़ जैसे मूर्तिमान् गर्व बना खड़ा था। उसे देखने पर खड्ड की दीनावस्था का पता चलता था। ऐसा महसूस होता था, जैसे वह मुँह खोले दया की भीख माँग रहा हो। इस बीच में काशी जड़ी-बूटियों का सहारा लेता हुआ पगडंडी पर कई क़दम बढ़ गया था। साहस के साथ वे भी उसके पीछे हो लिये।

सब पौधों को पकड़ पकड़ कर चलने लगे। अधिकांश मार्ग तय हो गया। कुछ ही पग रह गये थे। उस समय एक भयानक ध्वनि सुनाई दी। काशी के सिर पर एक बड़ा पत्थर लुढ़का आ रहा था। लड़के चीखकर पीछे हटने लगे। काशी भी विद्युत्-वेग से पीछे हटा, परन्तु उसका पाँव फिसला और वह पौधे को पकड़े हुए खड्ड में लटक गया। एक चीख़ और पौधे की जड़ पत्थर की चोट से टूट गई। काशी कलाबाजियाँ खाता हुआ खड्ड में जाने लगा और उसके पीछे वह भयानक पत्थर, जिस तरह चूहे के पीछे बिल्ली।

लड़के रो रहे थे और सावधानी से पीछे को हटते जा रहे थे। उन्होंने एक और बड़ा पत्थर देखा जो पहले की सीध में लुढ़कता आ रहा था, परन्तु इस बार वे चीखे नहीं। अब वे इसकी हद से बाहर थे। ज्यों–त्यों उन्होंने वह मौत की पगडंडी समाप्त की और रोते हुए वापस शोली की

ओर भाग गये। उन्होंने वह क़हक़हा नहीं सुना जो पहाड़ के शिखर पर खड़े दीवाने बदरी ने लगाया। उस समय यदि उसे कोई देखता तो डर से काँप जाता। उसके बाल शुष्क और बिखरे हुए थे; उसकी आँखें सुर्ख़ और डरावनी थीं, उसके ओंठ फड़क रहे थे और उसके चेहरे पर रुद्रता बरस रही थी। उसने सुख की सेज में खटकनेवाले काँटे को निकाल दिया था। मुहब्बत के अखाड़े में वह बाज़ी जीत गया था और अपने प्रतिद्वन्द्वी को उसने चारों ख़ाने चित गिरा दिया था।

कल जब उसे मालूम हुआ था, काशी प्रातः शिमले को चल पड़ेगा तब उसने अपनी चिरसंचित प्रतिज्ञा को पूरा करने का फ़ैसला कर लिया था, जो उसने एक दिन पहले इसी पहाड़ी-शिखर पर की थी। उस दिन वह यहाँ मरने आया था। सुर्जू की अवहेलना ने उसे इस हद तक निराश कर दिया था कि अपना जीवन उसे सर्वथा शून्य दिखाई देता था—नीरस और विरस! और वह आया इस शिखर से गिर कर अपने इस व्यर्थ की साँसों के कारागार को फ़ना करने, इस शुष्क दुःखप्रद जीवन को नष्ट करने! लेकिन अचानक उसके कानों में उसके पूर्वजों के कारनामे गूँज उठे थे। आख़िर क्या वह उन्हीं बलवान् पहाड़ियों की सन्तान न था जो मरना न जानते थे, मारना जानते थे, जिन्होंने बीसियों मुसाफ़िरों का सर्वस्व लूट कर उन्हें खड्ड की गहराइयों में सदैव के लिए गिरा दिया था। इस घाटी में एक बड़ा भारी जल-प्रपात था। उसे देखने के लिए दर्शक दूर दूर से आया करते थे। उसके सामने आया कि किस प्रकार उसके पूर्वजों में से कोई डाकू किसी मुसाफ़िर को पथ-प्रदर्शक की हैसियत से जल-प्रपात दिखाने लाया और किस प्रकार उसने उसकी पीठ में छुरा भोंक कर लूट लिया और उसकी मृतक देह को गहरे खड्ड में गिरा दिया। इस दृश्य के सामने आते ही उसका हाथ कमर पर गया। लेकिन वहाँ ख़ंजर नहीं था। अँगरेज़ों ने इन भयानक डाकुओं को कायर और डरपोक पहाड़िये बना दिया था। इन ख़ूँख़्वार भेड़ियों को निरीह भेड़ों में परिणत कर दिया था। परन्तु उस दिन कहीं से बदरी में उसके पूर्वजों की निडर और उद्दंड रूह व्याप गई थी और उस दिन वह फिर भेड़ से भेड़िया बन गया था और उसने प्रतिज्ञा की थी कि

वह मरने के बदले मारेगा, स्वयं खड्ड में गिरने के बदले अपने रक़ीब को वहाँ गिराकर अपनी प्रतिहिंसा की प्यास बुझायेगा। उस दिन वह जहाँ मरने आया था, वहाँ से मारने का प्रण करके लौटा था।

रात भर वह सो न सका था। तड़के ही काशी चल पड़ेगा, इस ख़याल से वह निशीथ-नीरवता में ही उठकर केवल एक चादर ओढ़कर हरिण की भाँति कुलाचें भरता हुआ यहाँ आ पहुँचा था। रात तो भला चाँद का कुछ क्षीण-सा प्रकाश भी था, परन्तु यदि घटाटोप अँधेरा भी होता तो वह इस शिखर पर पहुँच जाता। प्रतिशोध की आँखें उसे अवश्य ही मार्ग सुझा देतीं।

आज वह अपने उद्देश्य में सफल हो गया था, आज उसका प्रण पूरा हुआ था। वह वापस शोली को मुड़ा ताकि वह सुर्जू के दिल से काशी की याद को निकाल कर फिर से अपनी मुहब्बत के बीज बोये। परन्तु कुछ दूर जाकर वह फिर शिमला को पलटा। उसने सोचा काशी की मृत्यु का समाचार सुनकर सुर्जू उदास हो गई होगी और अपने इस दुःख में उसकी ओर आँख उठाकर भी न देखेगी। वह शिमला जायगा। समय को सुर्जू के घायल दिल पर मरहम रखने की इजाज़त देगा और इस बीच में इतना रुपया इकट्ठा कर लेगा कि वह सुर्जू पर उपहारों की वर्षा कर दे और उसे अपनी दौलत अपनी मुहब्बत में इस भाँति जकड़ ले कि यदि काशी फिर जीवित होकर भी आये तो उसे उससे न छीन सके।

यह सोचते-सोचने उसकी पशुता गम्भीरता में बदल गई और वह चुपचाप शिमले की ओर चल पड़ा।

[४]

अप्रैल बीता, मई, जून, जुलई, अगस्त बीते और सितम्बर बीतने को आया। शिमला का मौसम ख़त्म हो गया। सरकारी दफ़्तर भी देहली और लाहौर जाने लगे। मैदान की गर्मियों से तंग आकर शिमला की पनाह लेनेवाले शिमले की सर्दी के डर से फिर वापस मैदानों की ओर चले गये। बदरी ने इस अरसे में बड़े परिश्रम से काम लिया। वह कुछ देर बाद शिमला पहुँचा था और उस समय किसी स्थायी जगह का मिलना मुश्किल था। लेकिन

उसने साहस नहीं छोड़ा। जहाँ भी कहीं मज़दूरों की आवश्यकता हुई वह वहाँ पहुँच गया और फिर इस दयानतदारी से उसने अपना काम किया कि उसे आशा से भी अधिक मज़दूरी मिली। कभी वह रिक्षा-ड्राइवर बना, कभी कमिटी का मजदूर; कभी उसने स्वास्थ्य–विभाग में काम किया तो कभी बिजली–कम्पनी में और जब कोई काम न मिला तब स्टेशन से बाहर जाकर खड़ा हो गया और आने–जानेवालों का सामान उठाकर अच्छे पैसे ले आया। उसके अंग इस्पात हो गये। कई बार उसने इतना बोझ उठाया कि कश्मीर के हातो भी दंग रह गये। थोड़ी-बहुत मात्रा में उसने व्यापार भी किया। लोअर बाज़ार से आम मोल लेकर नफ़े पर रुल्दू, भट्टा, सांकली और भराड़ी में बेच आया । इस काम में उसे इतना लाभ हुआ कि जब तक आमों का बाहुल्य रहा वह यही काम करता रहा। जीवन में जिस स्फूर्ति की आवश्यकता होती है वह उसके पास थी और वह दिन-रात काम करके भी न थकता था। उसने ख़र्च बड़ी सावधानी से किया और अब उसके पास लगभग तीन सौ रुपये मौजूद थे। इस रक़म को देखकर उसका उत्साह दुगुना हो जाता था। वह प्रतिदिन इस बढ़ती हुई संख्या को देखता था और प्रतिदिन उसकी आशालता पल्लवित होती जाती थी। कभी जब रात को थक-हार कर वह अपने डेरे में धरती पर लेटता तब उसके स्वप्नों की दुनिया सुनहरी हो जाती। इन स्वप्नोंमें वह सुर्जू से और सुर्जू उससे प्रेम करती। वह उसकी मुहब्बत को जीत लेता, उसके दिल में काशी की याद को भुला देता और अपने उपहारों तथा उपकारों से उसे राज़ी कर लेता और फिर कहीं से नींद की परी आकर उसकी थकी हुई पलकों को सुला देती।

सितम्बर बीतने पर बदरी की उद्विग्नता इस हद तक बढ़ी कि उसके लिए शिमले में अक्टोबर का महीना काटना अत्यन्त मुश्किल हो गया। अक्टोबर के पहले सप्ताह में ही उसने अपना जोड़ा जत्था सँभाला, सुर्जू के लिए विभिन्न उपहार ख़रीदे और उन नये वस्त्रों से सजकर जो उसने सिलवाये थे, वह एक दिन शोळी को चल पड़ा।

सन्ध्या का समय था। वह गाँव के समीप पहुँचा। जल-प्रपात के पास

जाकर वह रुक गया। नाले के किनारों पर सुर्जू की गायें चर रही थीं। उसे यक़ीन था कि सुर्जू भी कहीं पत्थर पर बैठी पानी से अठखेलियाँ कर रही होगी। उसने देखा, तनिक दूर एक बड़ी झाड़ी के पीछे उसका दुपट्टा लहरा रहा है। निश्चय ही वह वहाँ बैठी हुई थी। उसका दिल धड़कने लगा। उसने पञ्जों के बल धीरे-धीरे चलना शुरू किया। परन्तु उससे चला न जाता था, उसके पैरों में कम्प पैदा हो रहा था। वह पीछे से जाकर उसकी आँखें बन्द कर लेगा। वह मचलेगी, तड़पेगी और वह हाथ छोड़कर उसके सामने शीशा, कंघी, रुमाल, इत्र की शीशी, बिजली का टार्च और दूसरे उपहारों का ढेर लगा देगा। उल्लास के मारे उसके पाँव न उठते थे। इस तरह चलता हुआ वह झाड़ी के समीप पहुँचा कि उसके कान में गाने की आवाज़ आई। वह ठिठक गया। उसका सब नशा हिरन हो गया, उसमें आगे बढ़ने की शक्ति ही न रही। यह तो काशी की आवाज़ थी, यह तो वही गा रहा था। बदरी ने सुना, काशी की पुरानी परिचित स्वर-लहरी धीरे-धीरे वायुमंडल में बिखर रही थी—

बदरी ने एक-एक शब्द ध्यान से सुना। काशी गा रहा था। हाँ वही गा रहा था–अपना पुराना परिचित राग। बदरी के दिल की गहराइयों से दीर्घ निःश्वास निकल गया। उसने उचक कर देखा। दोनों एक-दूसरे के आलिंगन में बद्ध थे।

सुर्जू बोली—"काशी, यदि बदरी तुम्हें मिले तो तुम उससे क्या सलूक करो?"

"उसने मुझे पत्थर गिराकर मारने का प्रयास किया था, खड्ड में लुढ़कते समय मैंने उसे पहाड़ की चोटी पर क़हक़हा लगाते देखा था, परन्तु यदि तुम कहो सुर्जू, तो मैं उसे क्षमा कर दूं।"

"कदापि नहीं'। सुर्जू ने कहा—"मेरा बस चले तो मैं उसे जीवित इस जल-प्रपात में फिंकवा दूँ।"

काशी ने उसे अपनी भुजाओं में भींच लिया।

उस समय बदरी का सिर चकराया और वह मस्तक थामकर खोया हुआ–सा वहीं बैठ गया।

नासूर

एक दिन सुरजीत ने जल्दी जल्दी लिखा—

"ईश्वर जी मुझे ले चलो इसी वक़्त। मेरी रूह पिंजरे की तीलियों में सदा के लिये बन्द हो जाने वाले पक्षी की भाँति छटपटाती रहेगी। तिल तिल करके क्या आप चाहते हैं, मैं जलती रहूं? आपने मुझे यह सब क्यों सिखया, यह आर्ट, यह कला, मेरी आँखों को इतनी विशालता क्यों प्रदान की, मेरे हृदय को इतना भावुक क्यों बना दिया? मेरे मस्तिष्क को...... क्या इसीलिये कि इस समस्त विशालता और भावुकता के साथ, अपनी इन लम्बी लम्बी अंगुलियों से (जो आपके कथनानुसार खास तौर पर चित्र-कला के लिये बनी हैं) मैं लोहे की सुलाखों पर रङ्ग किया करूँ........."

और उसकी आँखे छलछला आई। आँसुओं की एक दो बूंदें काग़ज़ पर ढुलक कर फैल गई। कण्ठ में कुछ गोला सा आकर अटक गया और हृदय की सिहरन से कलाइयों में पड़ी हुई लाल चूड़ियां झनझना उठीं और मस्तक के चाँद का प्रतिबिम्ब सामने लगी शृङ्गार की मेज़ के शीशे में झिलमिला कर कमरे को रोशन करता हुआ विलीन हो गया।

समीप ही रसोई-घर में अगणित प्लेटों के धोए, साफ़ किये जाने तथा रखे जाने की आवाज आ रही थी। स्वादिष्ट भोजनों की सुगन्धि वायुमण्डल के कण कण में बसी जा रही थी। नौकरों और प्रबन्धकों की चिल्ल-पों के मारे कान पर पड़ी आवाज न सुनाई देती थी। परे हाल कमरे में बारात के बैठने का प्रबन्ध करने वाले लोगों में ईश्वर का कोई क़हक़हा गैलरी में से होता हुआ वहाँ आ पहुंचता था और ऊपर बिसाती में ढोलक पर बच्चियां गा रही थीं। बालो अपने चन्न (चाँद) से कहती है--

कोई मिश्री दी डली ओ डली,

कल असां दुर जाना;

फेर ढूंढ़ेगा गली ओ गली ।*

सुरजीत झुकी झुकी लिख रही थी। बहुमूल्य साड़ी और बेशक़ीमत आभूषणों में आवृत्त उसके हुस्न को चार चाँद लग गए थे। किन्तु यह चाँद शीतकाल के शुक्ल पक्ष की रातों के चाँद थे, जिनकी दीप्ति प्रभात की धुंधियाली के कारण कुम्हलाई हुई थी।

सीधे खड़े होकर साड़ी के छोर से आँखों को पोंछते हुए उसने पत्र को पढ़ा। हाल कमरे से ईश्वर का क़हक़हा फिर गैलरी को गुँजाता हुआ आया।

पत्र को बन्द करते हुए उसने नौकर को आवाज़ दी।

रसोई-घर के दरवाजे पर उसके बाबा खड़े थे। उनके चेहरे की नस नस से उल्लास फूट रहा था। उनके जीवन में जैसे इससे बड़ा उल्लास का दिन फिर न आयेगा। गाल उनके उभर आए थे, आँखें रोशन थीं और दाढ़ी के सफ़ेद बाल जैसे उनके आन्तरिक उल्लास के कारण चमक रहे थे।

सुरजीत कुर्सी में धँस गई। पत्र उसके हाथों में तुड़ मुड़ गया और फिर पुर्ज़े पुर्ज़े हो गया।

उसी समय नौकर ने कहा—"कहिए बीबी जी?"

"ईश्वर जी से कहो, इतने ऊँचे न हँसें, सिर में दर्द सा हो रहा है।"

नौकर पल भर के लिये हैरान सा खड़ा रहा, फिर चला गया।

और सुरजीत ने सोचा—"आज ये इतने ऊँचे, इतना अधिक क्यों हँस रहे हैं? पहले तो यों कभी नहीं हँसे!"

---

* पंजाब का देहाती गीत है। अर्थ है—"कल हमें चला जाना है, फिर वह हमको गली गली खोजेंगे।"

पांच महीने पहले

वसन्त के आरम्भ की एक दुपहरी में एक पतला सुन्दर युवक ४५ कनॉट प्लेस की सीढ़ियों की ओर बढ़ा—गले में सिल्क की कमीज, उस पर अचकन, कमर में चूड़ीदार पाजामा, पैरों मे कामदार जूता, और सिर पर सावधानी से बँधी हुई दस्तार–रंग उसका गन्दमी था। रूप, रङ्ग तथा वेश-भूषा से वह हँसमुख, हसीन सूरत युवक मालूम होता था। बेपरवाही का यों कोई निशान उसमें न था। अचकन के बटन अवश्य खुले थे और कमीज के गले का भी, और गले का सुन्दर खम साफ़ दिखाई देता था। पर इतनी सी बेपरवाही तो फ़ैशन में शामिल समझ कर नज़र–अन्दाज की जा सकती है।

सीढ़ियों के पास आकर वह तनिक रुका। धूप बाहर तेज़ थी और उसके मस्तक पर पसीने की नन्हीं नन्हीं बूंदें झलक आई थीं। जेब से एक तह किया हुआ दूध जैसा श्वेत रूमाल निकाल कर उसने पसीना पोंछा। एक सुख की लम्बी सांस ली और फिर बेख़याली में उन चौड़ी सीढ़ियों की दीवार पर अपनी पतली लम्बी अंगुली से दिखाई न देने वाली तस्वीरें बनाता हुआ वह धीरे धीरे चढ़ने लगा।

जिस कमरे में कुछ क्षण बाद वह दाखिल हुआ, वह एक आर्टिस्ट का कमरा था। वैसे उसे ड्राइङ्ग रूम भी कहा जा सकता है। पर कमरे में महत्व की चीज़ें–कोच, उन पर पड़े हुए रेशमी कुशन या दर्म्यान में पड़ा हुआ अखरोट की लकड़ी का अठकोना मेज और मेज़ पर पीतल के चार छोटे छोटे हाथियों के मध्य रखा हुआ गुलदान या दरवाजों और खिड़कियों के भारी पर्दे न थे। बल्कि कमरे की दीवारों पर टंगी हुई चित्रकला की उत्कृष्ट कृतियां, अंगीठी के कपड़े की गुलकारी, उस पर पड़ी हुई एक प्रस्तर मूर्ति, एक कोने में रखा हुआ ईज़ल, उस पर फ़िट किया हुआ सिल्क का स्क्रीन, पास ही एक स्टूल पर रखी ट्रे में प्लेट, रङ्ग का डिब्बा और ब्रश आदि थे।

कमरे में उस समय कोई न था। युवक ने बाहर ही से मीठे स्वर में आवाज़ दी—"सुरजीत!"

कमरा खाली था। आवाज़ फिर आई—"सुरजीत!"

फिर किवाड़ों पर प्यार भरी टिकटिक और फिर युवक पायदान पर पांव पोंछता हुआ दरवाज़ा खोल कर अन्दर आ गया।

एक निमिष के लिये उसने इधर उधर चित्रों पर दृष्टि डाली, फिर वह स्क्रीन के पास गया। चारकोल का कुछ स्केच सा बना था। ट्रे से चारकोल उठा कर उसने एक दो लकीरें बनाते हुए आवाज़ दी—"सुरजीत!"

एक छोटे से नौकर ने अन्दर से झांका—"अभी आती हैं बाबूजी।" और एक प्लेट में कुछ मिठाई लाकर मेज पर रख दी और पूछा—"सोडा पीएँगे या........"

"पानी" और फिर..."नहीं नहीं कुछ भी नहीं..." नौकर चला गया।

युवक ने मिठाई का नन्हा सा एक टुकड़ा मुँह में रख लिया और बरामदे में जा खड़ा हुआ।

बाहर ठण्डी हवा रुमक रही थी। सामने फ़ुटपाथ पर लगे हुए पेड़, जो नव-वय होने के कारण अधिक ऊँचे नहीं हो पाए थे, मस्त हुए झूम रहे थे। विशाल सड़क पर एक तांगा जा रहा था और उसमें कोई यौवन-माती जैसे अपनी ही दुनिया में मस्त बैठी थी। नीचे दूकान के सामने एक कार आकर खड़ी हो गई और उसमें से उतर कर बटुआ हाथ में लिये एक तेज तेज चलती हुई साड़ी दुकान के अन्दर चली गई। और उसके पीछे पीछे सिगार का धुंआ उड़ाता हुआ एक सूट। पास से दो सुर्ख़ सुर्ख़ गालों वाले बच्चे लम्बे कालरों की कमीजें और नीली नेकरें पहने बाइसिकलों पर जैसे उड़ते हुए गुजर गए.....

युवक ने एक लम्बी सांस ली। वह मुड़ा, अन्दर से पांवों की चाप सुनाई दी और चित्र का फ्रेम उसे दिखाई दिया।

"जीवन भी क्या मन का प्रतिबिम्ब ही नहीं सुरजीत?"...... उसने कहना शुरू किया।

लेकिन जिसे वह सुरजीत समझा था, वह सुरजीत के बाबा निकले—

चित्र हाथों में लिये उसे देखते हुए आ रहे थे। दहलीज की ठोकर लगने से गिरते गिरते बचे-गालों से उनके उल्लास फूटा पड़ता था। ख़ुशी की जैसे किरणें उनकी आँखों से निकल रही थीं।

युवक ने आँख उठा कर देखा—श्वेत दाढ़ी, भोला मुख, मुस्कराते ओंठ—सरदार बहादुर सरदार गुरदयाल सिंह को देखते ही उसकी आँखों में पितृ भाव की श्रद्धा सी उमड़ पड़ी।

" सुरजीत आज न आएगी ? " उसने पूंछा।

वृद्ध तनिक समीप हो गए और भरे भरे स्वर में उन्होंने कहा—" जालन्धर में टाटा के एजेन्ट हैं न सरदार साहब सरदार बलबीर सिंह, उनके पुत्र हैं महेन्द्र सिंह। एम्. ए. हैं और अब श्रीनगर काश्मीर में अपनी ब्रान्च का काम देखते हैं। वे आज सुरजीत को देखने आएँगे। जालन्धर में दो कोठियां हैं उनकी और लाहौर में तथा काश्मीर में............" और उन्होंने कहा—" देखो इस तस्वीर को तुमने सुरजीत की सबसे अच्छी तस्वीर कहा था। सरदार सोभा सिंह और चग़ताई साहब तक ने इसकी प्रशंसा की है। इसे इस कमरे में लगा दें न ? "

व्यङ्ग भरी मुस्कान के साथ युवक ने पूछा—" तो वे आर्टिस्ट हैं क्या ? "

हँसते हुए बाबा ने कहा..." नहीं...पर......"

" हां, हां लगा दीजिए " वह बोला।

" और ये अवनीन्द्रनाथ, नन्दलाल बोस, कणु देसाई और चग़ताई के चित्रों की जगह भी सुरजीत की बनाई हुई तस्वीरें लगा दीजियेगा। ये सब चित्र शायद वे पसन्द न करें। आपको पता है न चरण सिंह........"

" यह तुमने ठीक कहा "—और बुज़ुर्ग जल्दी—जल्दी वापिस चले गए।

फिर अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के " स्वतन्त्र मृग " के स्थान पर " गुरु नानक " नन्दलाल बसुके " प्रकृति पुरुष " के स्थान पर " दरबार साहिब अमृतसर " रामगोपाल विजवर्गीयके " विकास " के स्थान पर " दसवें पादशाह " चग़ताई साहिब के " परवाने " के स्थान पर " गुरु तेग़ बहादुर " और कणु देसाई के " बापू " के स्थान पर स्वयं अपने हाथसे बनाया हुआ सुरजीत का अपना चित्र लगाया गया।

जब कमरा विभिन्न कलकारों के आर्ट की नुमाइश के स्थान पर एक ही आर्टिस्ट के सब तरह के धार्मिक चित्रों की प्रदर्शिनी बन गया और वे

चित्र, जिन पर भारत के उत्कृष्ट कलाकारों ने न जानें कितने बेशक़ीमत दिन व्यतीत किये थे और सुरजीत ने जानें किस चाव से लाहौर, शिमले, दिल्ली और कलकत्ते की नुमाइशों से जिन्हें ख़रीदा था अन्दर छोटे से स्टोर रूम में चले गये (जो मात्र सुरजीत के कला सम्बन्धी सामान के लिये रिज़र्व था), तो वृद्ध संतोष की एक सांस लेकर बाहर बरामदे में जा बैठे और युवक कोच में धंस गया। लेलिन धंसने से पहले उसने इतना अवश्य पूछा था—" तो क्या आज मैं जाऊँ ? "...और जब उसके उत्तरमें—" नहीं नहीं आप..."...कहते हुए बुज़ुर्ग उठने लगे थे तो वह चुप चाप बैठ गया था।

वहीं बैठे बैठे उसकी आंखें सुरजीत के चित्र पर चली गयी थीं—सुरजीत का अपने हाथ से बनाया अपना चित्र। कोई देख ले तो देखता ही रह जाय। यौवनका सबेरा उदय हो रहा था, आंखों में ठंडक पहुंचाने-वाली दीप्ति चारों ओर फैल रही थी, और दर्शक का मन प्राण उस ज्योति से भरपूर हो जाता था।

सुरजीत का अपने हाथ से बनाया अपना चित्र...लेकिन वह जानता था कि उसने उस चित्र पर कितना परिश्रम किया था, उसके हृदय की समस्त शक्तियों ने किस प्रकार उसकी रेखाओं को उभारा था। क्या इसी लिये कि उसे देख कर एक लोहे का व्यापारी उसे पसन्द कर ले ?

एक व्यङ्ग भरी मुस्कान उसके ओठों पर फैल गयी। उसका दम घुटने सा लगा लेकिन उसी समय सुरजीत कमरे में दाख़िल हुई। पंखड़ियों से ओठ मुस्कराए, लज्जा के भार से दबी जैसे तितली के पंखों सी पलक फड़-फड़ाई और हाथ जोड़ते हुए जैसे ओठों ही में उसने कहा—" सत-श्री-अकाल, ईश्वरजी "

ईश्वर ! युवक हँसा और फिर, जैसे वह मीलों चल कर कोच में धंसा हो और उठने में उसे कष्ट हो रहा हो, अन्यमनस्कता के साथ अपनी हथेली को कोच पर रख कर वह उठा और ईज़ल के पास जाकर खड़ा हो गया।

" आप दो दिन आये नहीं ! "

युवकने उधर देखा और मुस्कराया।

"यह मेरा चित्र, देखियेगा, मेरे सब चित्रों से बाजी ले जायगा। मैं कहती हूं–ईश्वर जी, भावनाएँ मेरे हृदय में इतनी हैं, इतने विचार हैं कि यदि कहीं कला पर अधिकार हो जाय तो न जानें कैसी चीज़ों का सृजन कर दूं? 'एक नूर से सब जग उपजिया'–शब्द तो आपने सुना होगा, पर इस शब्द की आदर्श व्याख्या (Idealistic Interpretation) का खाका भी तनिक देखिये।"

"लेकिन लोहे के व्यापारी शायद इसे पसन्द न कर सकें"—कोयला लेकर खाके की कुछ रेखाओं को ठीक करते हुए ईश्वर ने कहा।

सुरजीत का रङ्ग कानों तक सुर्ख़ हो गया और उसने जैसे चौंकी हुई मृगी की भाँति पहली बार इधर-उधर देखा।

"यह क्या! यह सब परिवर्तन किसने किया?"—उन चित्रों को देखते हुए सुरजीत ने कहा।

"इसलिए कि लोहे का व्यापारी तुम्हें पसन्द कर ले। जानती हो न चरण सिंह की बात..."

ये चरण सिंह एक प्रोबेशनरी मजिस्ट्रेट थे। अत्याधिक ग़रीब के घर पैदा होकर अपनी मेहनत के बल पर पी. सी. एस. की परीक्षा में ये सर्व-प्रथम आये थे। एक चित्र के अपेक्षाकृत 'नंगेपन' को देखकर उन्होंने कहा था—"जो इन चित्रों को बना सकती है (या शायद यह कहा था कि जो ऐसे चित्र ड्राइंग रूम में लगा सकती है) वह एक घर को सुखी नहीं रख सकती–फिर सुन्दरता में चाहे वह हूर ही क्यों न हो?" उनकी यह बात उनके एक मित्र द्वारा ईश्वर तक पहुंची थी। उस समय तो प्रकट उन्होंने यही कहा था कि लड़की पढ़ी हुई अधिक है और उन्हें इतनी शिक्षित नहीं चाहिये।

"ईश्वर जी......!

और रुआंसी–सी होकर वह वहीं कोच में धँस गई और युवक अन्यमनस्कता से चारकोल से स्क्रीन पर लकीरें बनाने लगा।

पांच वर्ष पहले

ईश्वर अपने स्टूडियो में मात्र एक रेशमी कमीज और तहबन्द पहने तूलिका अपने हाथ में लिए एक चित्र में रंग भर रहा था। चित्र चूंकि मन की इच्छा के अनुसार उतर रहा था, इसलिए वह साथ-साथ हलके स्वर में सीटी भी बजाये जा रहा था-'अपूर्ण गान'—जीवन मार्ग पर किसी शाम के धुंधलके में जब पश्चिम के क्षितिज पर गहरे नीले बादलों में स्वर्ण रेखाएँ नदियों-सी झिलमिला उठती हैं, एक युवक और युवती आ मिलते हैं। कुछ दूर इकट्ठे चलते हैं, एक दूसरे का परिचय पाते हैं, हृदयों के तारों से प्रेम का संगीत झंकृत हो उठता है, पर अभी वह गान समाप्त नहीं होता कि जीवन-मार्ग का मोड़ आ जाता है, जहाँसे उन्हें अलग होना है.........तभी नौकर ने कार्ड देते हुए कहा—" सरदार बहादुर, सरदार गुरुदयाल सिंह !"

और कार्डको वहीं रख, ड्रेसिंग गाउन पहन, वह आगन्तुक से मिलने के लिए तैयार हो गया।

आगन्तुक सरल स्वभाव के वृद्ध थे। घनी लम्बी श्वेत दाढ़ी और भारी मूँछों में से भी जैसे उनके होठों की मुस्कान छिन कर चेहरे को दीप्त कर रही थी।

" मैं आपका अधिक समय न लूंगा। " उन्होंने सोफ़े पर बैठते हुए कहा-मैंने आपके आर्ट की बहुत तारीफ़ सुनी है। मेरे एक पोती है, एकमात्र वही मेरी ख़ुशी का केन्द्र है। मेरा लड़का इञ्जीनियर था। वह, उसकी बीबी, बच्चे सब क्वेटा के भूचाल में दब गये " और इस घटना की स्मृति मात्र से उनकी आँखें सजल हो गईं, " बस, एक यही लड़की बच गई थी " उन्होंने कहना शुरू किया, " पिता ने तरस-तरस कर प्राप्त किया था उसे, बाजे बजवाये थे, शीरीनी तक़सीम की थी, पर अपने जीवन में वह उसे उसके घर सुखी देखने का चाव भी पूरा न कर सका। "

और अवरुद्ध कण्ठ को बरबस गीला करके और संयत होकर उन्होंने कहा-" एफ़. ए. में अपनी श्रेणी में द्वितीय रही थी। उसे चित्र-कला का बड़ा शौक है, यदि आप कुछ समय दे सकें, तो......"

ईश्वर ने विनय के स्वर में क्षमा मांगते हुए कहा था कि वह ट्यूशन नहीं करता।

वृद्ध कुछ मायूस हो गए। फिर उन्होंने कहा–" मेरी यह इच्छा थी कि आप कुछ-न-कुछ समय, चाहे सप्ताह में एक बार ही क्यों न सही, उसे अवश्य देते।" और फिर उन्होंने कहा—" उसे बहुत शौक़ है, उसका हाथ भी काफ़ी चलता है। आपको बहुत कष्ट न होगा, सिर्फ़ उसे मार्ग बताने की आवश्यकता है, वह चल पड़ेगी।"

वृद्ध की आकृति में जो प्रार्थना का भाव था और उनके स्वर में जो विनय थी, उसने कलाकार के हृदय को असमञ्जस में डाल दिया।

और वृद्ध ने फिर कहा–" पिता की वह अत्याधिक लाड़ली थी। अब, जब काल ने उसके सिर से पिता का हाथ उठा लिया है, तो मैं उसे यह अभाव महसूस नहीं होने दूंगा। मैं उसकी हर इच्छा पूरी करूंगा।"

यह कहते उनकी वाणी आर्द्र हो गई थी और ईश्वर मान गया था।

और जब दो दिन बाद बताये हुए समय पर वह उनके घर पहुंचा था और दरी पर बैठी हुई और काग़ज़ पर किसी चित्र का ख़ाका बनाती हुई एक तरुणी से वृद्ध ने कहा था–" सुरजीत, ये हैं तेरे नये मास्टर जी" और तितलियों सी फड़फड़ाती, किन्तु लज्जा के भार से झुकी हुई पलक उठी थी, तो वह मुग्ध-सा रह गया था।

और फिर बाद को वह यह भी भूल गया था कि उसने सप्ताह में मात्र एक दिन आने का वादा किया है।

लेकिन ये सब तो पहले की बातें हैं। उस दिन तो इतना ही हुआ कि स्टूडियो में पड़े हुए ईज़ल, उसपर कसे स्क्रीन और उसपर बनने की बाट जोह रहे चित्र को भूल कर वह विवाह के हेतु किराये पर ली गई उस कोठी में सुरजीत के बाबा का हाथ बटाता रहा था और नौकरों, हलवाइयों, विवाह के अवसर पर आने वाले दूर-नजदीक के रिश्तेदारों और उनके बच्चे-बच्चियों के शोर में उसके क़हक़हे गूंजते रहे थे और जब समय पर दूल्हा साहब तशरीफ़ लाए थे और ज्ञानी ने शब्द पढ़ने आरम्भ किये थे, तो सुरजीत चुपचाप ग्रन्थ साहिब के सामने जा बैठी थी।

इसके बाद एक वर्ष तक श्रीनगर से चिट्ठियां आती रहीं। एक चिट्ठी में उसने लिखा—

"........सब तरफ़ बहार छाई है। फूल खिले हैं, बग्गू गोशों के विटप फल ले आए हैं, लेकिन मेरे मनका फूल मुरझा गया है और फल शायद अब उसमें कभी न लगे..."

फिर एक चिट्ठी में लिखा—

याद है न ईश्वर जी, आपने एक बार कहा था—"मैं तुम्हारे यहाँ कभी टयूशन न करता, यदि यह कहते कि 'पिताकी यह बड़ी लाड़ली थी। अब, जब उसके सिर पर पिता का हाथ नहीं रहा, मैं उसे यह अभाव महसूस न होने दूंगा। मैं उसकी हर इच्छा पूरी करूंगा।' तुम्हारे बाबा की आँखें आर्द्र न हो जातीं और उनमें कोई स्वर्गीय चमक न झिलमिला उठती-" मुझे आपके मुंह से सुना उनका यह वाक्य बार-बार याद आता है। उन्होंने मेरी सब इच्छाएँ पूरी कीं या मैंने उनकी?"

फिर एक बार लिखा—

"ईश्वर जी! माता-पिता लड़कियों को सौ-सौ लाड़-प्यार से पालते हैं, ऊँची-से-ऊँची शिक्षा देते हैं, ललित कलाएँ सिखाते हैं—कोई संगीत में निपुणता प्राप्त करती है, कोई अच्छी लेखिका बन जाती है और कोई अभागिनी आर्टिस्ट! फिर माँ-बाप बिवाह करा देते हैं-मेरी एक सहेली है, उसकी आवाज़ में जादू था, पर उसके वाद्य यन्त्रों पर अब धूल पड़ी रहती है और उनके ढकने खोलने में भी अब उसे कष्ट होता है। एक दूसरी कभी अच्छी लेखिका बनने जा रही थी, और उसके पिता बड़े गर्व से, उसे देखने के हेतु आने वालों को, उसकी छपी कविताएँ और कहानियां दिखाया करते थे। लेकिन अब उसे समाचार-पत्र तक देखे हफ्तों बीत जाते हैं। एक तीसरी थी सुरजीत—बड़ी भारी कलाकार बनने जा रही थी, पर अब...

लेकिन छोड़ो। बाहर सुबह का सूर्य कब का निकल आया है। खिड़की के शीशों में से मैं पहाड़ों के हिममण्डित शिखरों को चमकते देख रही हूं। रूह बाहर जाकर उसे पहाड़ियों से उदित होते देखने के लिए तड़पती रही है—पर वे तो खुर्राटे ले रहे हैं और दस बजे तक लेते रहेंगे..."

ये पत्र कभी पन्द्रह दिन, कभी महीना और कभी दो-दो महीनों के बाद आते रहे और फिर उनका सिलसिला क़तई बन्द हो गया।

पाँच वर्ष बाद

बसन्त के आरम्भ की एक दुपहरी में ईश्वर ४५ कनॉट प्लेस की ओर ज़रा जल्दी जल्दी जा रहा था। सिर पर दस्तार ही थी, पर उसे सावधानी से बँधी हुई हम नहीं कह सकते। गले में सिल्क की कमीज़ थी और उसपर अचकन, लेकिन दोनों का रंग तनिक मैला था। ऊपर की जेब का रूमाल अब दायीं जेब में पड़ा था—दूध जैसा सफ़ेद भी अब वह न था और तह भी अब उसकी नहीं लगी हुई थी। कमर में चूड़ीदार पायजमा था, लेकिन पांवों में कामदार जूते की जगह सिर्फ़ चप्पल थी-कुछ ऐसी बेपरवाही उसपर छाई हुई थी, जो फ़ैशन में शामिल नहीं कही जा सकती।

आकाश पर श्वेत, मटमैले, नीले, काले बादलों के टुकड़े बिखरे थे, जैसे अम्बर के इस विशाल स्क्रीन पर किसी अज्ञात कलाकारने अपनी तूलिकासे कहीं हलके और कहीं गहरे रंग के धब्बे बना दिये हों। सूर्य पर एक काले बादल का बड़ा-सा टुकड़ा छा गया था और दूर कोठियों के सिरों पर धूप चमक रही थी।

वह क्षण-भर के लिए रुका। मस्तक पर उसके पसीने की बून्दें नहीं थीं और होतीं भी, तो उन्हें पोंछने का वह कष्ट न करता-आज पांच वर्ष बाद सुरजीत आई थी। अपने बाबा की मृत्यु पर ही। और उसने सुना था कि इस पांच वर्ष के अर्से में वह तीन बच्चों की माँ बन चुकी है।

सीढ़ियों की दीवार पर लकीरें-सी बनाता हुआ वह धीरे-धीरे चढ़ने लगा, परन्तु प्रत्येक सीढ़ी के साथ-साथ उसकी गति धीमी होती गई, यहाँ तक कि उनकी समाप्ति पर वह रुक गया।

जिस कमरे में कुछ क्षण बाद वह दाख़िल हुआ, वह ऐसे ही था, जैसे पांच वर्ष बाद वह कमरा हो सकता है, जिसे इस लम्बे अर्से में एक बार भी नारी के हाथों ने न छुआ हो—वे ही पर्दे थे, वही दरी, वही कोच,

वही अखरोट का मेज और उसपर रखे हुए पीतल के हाथी, वही अंगीठी और उस पर की प्रस्तरमूर्ति, वही तस्वीरें, जिन्हें इसलिए लगाया गया था कि लोहेका एक शिक्षित व्यापारी उनकी बनाने वाली की पसन्द कर ले—सब कुछ वही था, मात्र एक हल्की-सी उदासी उन सब पर छाई हुई थी—कम-से-कम ईश्वर जब कमरे में आया, तो उसे ऐसा ही प्रतीत हुआ।

आने से पहले उसने आवाज भी दी। सुरजीत का नाम लेकर नहीं वरन् नौकर का नाम लेकर! फिर किवाड़ पर टिक टिक भी की पर उसके न खुलने पर अन्दर नहीं आ गया बल्कि प्रतीक्षा करता रहा।

तब नन्ही सी एक चार वर्ष की बालिका ने आकर कहा—"आ जाइये!"

और वह कोच पर जा कर बैठ गया और निर्निमेष उस कली सी नन्हीं बालिका की ओर देखने लगा। मां जैसा इकहरा पतला शरीर, लम्बी तीखी नाक, सुन्दर आयताकार चेहरा, फड़फड़ाती पलकें और पत्तियों से ओठ—और हाथ पकड़ कर उसने उसे अपनी गोद में खींच लिया—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"लाड़ली"

"लाड़ली!"—दिल में उसने सोचा-शायद तुम्हारे आने पर ही सुरजीत ने पत्र लिखना बन्द कर दिया था; पर प्रकट उसने उसे गोद में खींच लिया और अनिमेष दृगों से उसके मुख को देखने लगा और फिर उसने उसे चूम लिया............

तभी सुरजीत एक बच्चे को गोद में उठाए हुए दाखिल हुई। ईश्वर के चेहरे पर तनिक स्याही पुत गई जैसे अपराध करते उसे किसी ने पकड़ लिया हो-लेकिन सुरजीत के शरीर में सनसनी सी दौड़ गई-ऐसी कि इस पांच वर्ष के अर्से में तीन बच्चों की मां बनने पर भी न दौड़ी थी—

एक ओर वह चुपचाप कोच पर बैठ गई।

ईश्वर सब कुछ भूल गया। सुरजीत इतनी मोटी नजर आती थी कि वह हैरान था कि यह वही सुरजीत है या और। आख़िर उसने कहा—"आप तो काश्मीर जाकर खूब स्वस्थ हो गई"

सुरजीत विषाद से हँसी—"ऐसे नासूर क्या आपने नहीं देखे जो बाहर से अच्छे दिखाई देते हैं, लेकिन अन्दर की ओर बढ़ते चले जाते हैं?"

कुछ क्षण तक ईश्वर स्तब्ध बैठा रहा, फिर उसने सुरजीत के बाबा की मृत्यु की बात चला दी।

एक घण्टे बाद जब वह लकीरें सी बनाता हुआ धीरे धीरे सीढ़ियों से उतर रहा था तो मन ही मन वह कह रहा था—"ऐसे नासूर भी तो होते हैं जो अन्दर बाहर दोनों ओर बढ़ते हैं। सुरजीत शायद उनको नहीं जानती।"

जादूगरनी

"इस छोटे से गांव में वह ही इस नन्हे से सुन्दर महल की स्वामिनी थी।

उसे कभी किसी ने किसी से बातें करते न सुना था। मौन और एकाकी वह अपनी वाटिका की वीथियों में घूमा करती थी।

उसके बाल घुटनों तक लम्बे और रात की भांति काले थे, उसकी आंखें मद भरी और दिल में घर करने वाली थीं, उसका सुन्दर मुखड़ा बालों के घने घोंसले में नन्हें से श्वेत पक्षी की भांति दिखाई देता था। वह देवी थी—सुन्दरता और सुकुमारता की देवी!

अपने विश्व-विजयी रूप के गर्व में वह इस गांव और उसके वासियों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखती थी। हाँ, कभी २ उसका दिल युवा गड़रिये की ऊंची तानों के साथ आकाश की ऊँचाइयों पर उड़ जाता, परन्तु वह उसे सदैव वापिस ले आने का प्रयास किया करती।

उसके दिन एकान्त में गुजरते हों यह बात न थी। उसकी दुनिया स्वप्नों की दुनिया थी। वह अपने कल्पित संसार में विचरा करती। कल्पनाओं के गढ़ बनाती और ढाती—इसके सिवा उसे कोई काम न था। उसके बूढे दादा ने उसकी किसी बात का विरोध न किया था और वह अपनी सुन्दर कल्पित दुनिया में बिचरने को स्वतन्त्र थी।

लोग उसे जादूगरनी कहते थे—रूपगर्विता जादूगरनी।

वह गड़रिया था—सुन्दर गड़रिया—गाँव के गड़रियों का राजा!

वह युवा था और उसकी नस नस में जवानी का ख़ून हिलोरें लेता था।

उसके सुगठित शरीर की ओट में वीररस मानों स्वयं साकार हो गया था।

उसकी बड़ी बड़ी काली आँखों में मस्ती छलती थी—जिस तरह आबनूस की लकड़ी के बने हुए सागर में शराब!

उसकी आवाज में मोहिनी थी और उसकी मनमोहक तानें गांव के वायु-मण्डल में गूंजा करती थीं।

जब कभी चाँदनी रातों में वह प्रेम में डूबे हुए राग आलापता तो जादूगरनी के स्वप्नों की दुनिया जाग उठती—मैंड़ों पर ऊंघते हुए किसान अंगड़ाई लेकर उठ बैठते।

धीमे स्वरों में गाता हुआ वह अपनी भेड़ों को लिए हुए उसके महल की फ़सील के नीचे से गुजर जाता।

वह तन्मय होकर उसके गीत सुनती-उस मादकता से उसके मन प्राण प्लावित हो जाते, और क्षण भर के लिये वह अपने लम्बे नीरव स्वप्न भूल जाती। उसके मन में द्वंद्व सा मच जाता, परन्तु वह मानिनी थी, और उसका गर्व उस सुन्दर गड़रिये की ओर से आँखें फेर लेने को विवश कर देता।

गाँव के भोले भाले लोग उसे सचमुच जादूगरनी समझते और उसके छोटे से महल के पास जाते हुए डरते।

गांव के युवक, किसी अदृश्य जादू से खिंच कर उसके महल की फ़सील के इर्द-गिर्द घूमा करते ताकि वह उसे एक नजर से देख सकें।

और वह उनके अस्तित्व से बेख़बर अपने स्वप्नों में निमग्न रहती।

वह बड़े २ सुन्दर महलों के स्वप्न देखती, बड़ी बड़ी सुरम्य बाटिकाओं की सैर किया करती और यह नन्हा सा गांव प्राकृतिक सुन्दरता से परिपूर्ण होने पर भी उसे मूर्तिमान नरक दिखाई देता।

उसका अस्तित्व एक न खुलने वाला भेद था और इसकी कुंजी उसीके पास थी।

निर्दयी मदन के तीरों से उसका हृदय-शिशु का सा सरल हृदय-भी सुरक्षित न रह सका।

जादूगरनी की निगाहें उसके दिल में दूर तक खुब गईं।
उसके गानों में शिथिलता आ गई—उसकी तानें काँपने लगीं।
उसका लम्बा कुर्ता कई जगह से फट गया।
उसकी आँखों की मादकता उन्मत्तता बन गई।
उसे अपनी खेड़ की भी सुध न रही।
प्रेमी वह, पागल वह, उन्मत्त वह।

एक दिन उसके मुन्दर महल पर अग्नि का प्रकोप हुआ।

वायु ने आग पर तेल का काम किया, ज्वालाओं ने भयानक रूप धारण किया और चारों ओर फैल गईं।

सहसा महल से चीत्कार सुनाई दी और फिर खिड़की से उसका परेशान चेहरा नजर आया।

पागल गड़रिया बदहवास लोगों की भीड़ को चीर कर आगे बढ़ा और जीवन का मोह छोड़ कर महल पर चढ़ गया।

लोग चादरें तान कर खड़े हो गये।

एक हलका धमाका सा हुआ और सुन्दर जादूगरनी चादरों के जाल में अचेत आ पड़ी।

लोगों ने उससे भी कूदने को कहा, लेकिन उस मधुर क्षण की स्मृति को हृदय में समोये जब वह उसके आलिंगन में थी, और अचेत तरुणी पर एक दृष्टि डाल कर उस ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और पीठ फेर कर उस के बूढ़े दादा को बचाने के लिए किसी रक्तिम निर्झर के पानी की भांति उबलती हुई ज्वालाओं में कूद गया।

अब वह होश में आ चुकी है—पर उसके होश बीत चुके हैं।

उस आग ने गांव का गांव जला कर राख कर दिया था।

लोग नया गांव तैयार कर चुके हैं।

लेकिन वह अब भी पुराने गांव के खण्डहरों में घूमा करती है।

लोगों ने उसे गड़रिये—उसके स्वप्नों को परेशान कर देने वाले राजा, की मृत्यु का समाचार सुनाकर पागल कर दिया है।

पुराने गांव को देखने के लिए आनेवाले उसे उसी महल की जर्जर दीवारों में दुखी प्रेतात्मा की भाँति भटकते हुए देखते हैं।

उसका दर्प टूट चुका है—उसका जादू बाक़ी है, पुराने ख्याल के लोग अब भी उससे दूर रहने का प्रयास करते हैं। ”

चाँद के धीमे प्रकाश में खण्डहर भयानक दृश्य पेश कर रहे थे। गांव के वृद्ध कवि ने एक ऊंचे से खण्डहर की ओर संकेत करते हुए यह कहानी समाप्त की।

मेरे शरीर में सनसनी दौड़ गई।

मैंने दृष्टि उठाई। रूपगर्विता जादूगरनी पागल जादूगरनी बन चुकी थी और एक जर्जर दीवार पर सर रखे आँसू बहा रही थी।

इश्क पेचा की शुष्क बेल की भांति उसके लम्बे बाल जो प्रतिदिन नोचे जाने के कारण घने न रहे थे, वायु के झोंकों से इधर उधर बिखर रहे थे।

चित्रकारकी मौत

जब रात-दिन एक करनेपर भी मैं कम्पार्टमेण्टमें ही आया, तो कई दिनों तक घरसे बाहर न निकला। सब आशायें मिट गयीं। सूरत तक दिखानेमें लज्जा आने लगी। जगतने बहुत नम्बर पाये थे। वह अव्वल दर्जेमें पास हुआ था, राधारानी दूसरे दर्जेमें आयी थी, पर मैं बी० ए० की नदी पार न कर सका, मेरी नाव मँझधारमें ही रह गयी। गणितसे मुझे पहले ही चिद है; घरेलू परीक्षाओंमें कभी पास नहीं हुआ, परन्तु जैसा पहले होता आया था, वार्षिक परीक्षामें उत्तीर्ण होनेकी मुझे पूरी आशा थी। परिश्रम भी मैंने कम न किया था। सोलह, सत्रह घण्टे रोजाना—कह लेना आसान है, परन्तु सत्य ही परीक्षाके दिनोंमें मेरे अध्ययनका औसत सोलह—सत्रह घण्टे बैठता था और यों बैठनेको तो मैं कुछ दिन बाईस घण्टे और एक दिन चौबीस घण्टे भी बैठा। सारा-सारा दिन प्रश्नोंमें दिमाग़ खपाया, मगर परिणाम कुछ भी न निकला। गणितमें कम्पार्टमेण्ट आ गया। मेरी हिम्मत टूट गयी, जी उदास हो गया, खाना-पीना छूट गया। पर कब तक? आख़िर मित्रोंके कहने-सुनने और घर वालों के समझाने—बुझानेपर फिर किताबें ले बैठा। किताबें तो ले बैठा, पर पढ़े कौन? किताबें सामने रख लेने—मात्रसे ही तो सब कुछ कण्ठस्थ नहीं हो जाता। बहुतेरा प्रयास किया, पर व्यर्थ! पढ़नेसे जी घबराता था; परीक्षा पहाड़की उस चोटीकी भांति दिखाई देती थी, जिसपर चढ़ना दुश्वार हो। एक सड़क थी, जो क्षितिजमें गुम हो जाती थी। मैं असमञ्जसमें पड़ गया। कोई निश्चय न कर सका।

अँधेरेमें अचानक ज्योतिकी किरण चमक उठी। डूबतेको तिनकेका सहारा मिल गया। मिस्टर मान लाहौरके प्रख्यात चित्रकार थे। आपकी

कलाकी धूम सिर्फ़ भारतमें ही नहीं, अन्य देशोंमें भी मची हुई थी। मेरे चित्र देखे, तो तड़प उठे। कहने लगे--" तुम तो बड़े-बड़े चितेरोंके कान काटते हो, किधर समय नष्ट कर रहे हो, इधर क्यों नहीं आ जाते कला की ओर, आजकल पढ़ाई कलाका पानी भरती है, पढ़कर क्या लोगे ! और यदि सफल चित्रकार बन गये, तो ख्यातिके साथ दौलत भी पांव चूमेगी।"

बात भी ठीक थी, दिलमें उतर गयी; पर मेरा असमञ्जस न दूर हुआ। कई दिनों तक मस्तिष्कमें जो उधेड़बुन रही, जी ही जानता है। कभी सोचता, कम्पार्टमेण्ट पास करके एम० ए० में दाखिल हो जाऊं और अंग्रेजी लेकर जगत और राधा दोनोंको मात कर दूं; कभी ख्याल आता, चित्रकार बन जाऊं और अपनी ख्यातिका डङ्का चारों दिशाओंमें बजा दूं। इस दोराहेपर ऐसा ठिठका कि किसी ओर चलनेका निर्णय न कर सका। एक ओर एम० ए० का मार्ग था-ऊबड़-खाबड़ और कण्टकाकीर्ण। पहले कम्पार्टमेण्टके कांटे दूर करूंगा, तो मञ्जिलपर पहुंच पाऊंगा। दूसरी ओर कलाका रास्ता था, सीधा और सरल। इसमें न कोई उलझन थी, न कोई झंझट, परिश्रम भी बहुत नहीं। बचपन ही से मेरी रुचि कलाकी ओर रही है। मेरे चित्र अब तक भी कॉलेजके हॉलमें टँगे हुए हैं। मैं सोचता, चित्रकार क्यों न बन जाऊं; आखिर परीक्षा ही तो संसारमें उन्नतिका एक मार्ग नहीं। अधिकांश बड़े-बड़े कवि, चित्रकार, वैज्ञानिक, लेखक, आविष्कारक यूनीवर्सिटीकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण न हो सके थे, फिर भी उनका नाम ख्यातिके आकाशपर सितारोंकी भांति चमक उठा और आज तक चमक रहा है। मैंने इस प्रश्नपर भली भाँति विचार किया। चित्रकार बननेसे मुझे ख्याति प्राप्त करने का निश्चय था और राधाका प्रेमपात्र बननेकी पूरी आशा।

राधारानी जगतसे प्रेम करती थी। वह उसकी विद्वत्तापर मोहित थी। मुझे जगतसे ईर्ष्या होती थी। मैं राधाका दीवाना न था, पर यह भी सहन न कर सकता था कि वह मेरे सामने जगतसे प्रेम करे। उसे भी चित्र बनानेका शौक़ था। अच्छे चित्र बना लेती थी वह। कालेजमें प्रायः वह मेरे बराबर रहा करती थी, परन्तु उस बराबरीमें कलाकी उत्कृष्टताकी अपेक्षा

उसका नारी होना अधिक वज़न रखता था। मैं सोचता, अब मुझे अपनी कलाका चमत्कार दिखानेका अवसर मिलेगा। जब लोग मुक्तकण्ठसे मेरी कलाकी प्रशंसा करेंगे, जब पत्र-पत्रिकायें मेरे चित्र छापनेमें गर्व अनुभव करेंगी, जब सब ओर उनकी मांग होगी, तो राधाको भी मालूम होगा कि बी. ए. में फ़र्स्ट डिवीज़न प्राप्त कर लेना ही बड़ा तीर मारना नहीं।

मैं तङ्ग रास्तेको छोड़कर विशाल मार्गपर हो लिया। मीठी और अनुभूत दवाई होते हुए कड़वी औषध क्यों पीता ?

माल रोड पर मि. मानकी दूकानके साथ दूकान लेकर मैंने काम आरम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों बाद प्रान्तभरके प्रसिद्ध पत्रोंमें मेरे चित्र प्रकाशित हुए।

जगत किशोर

बार-बार सोचता हूं, बार-बार प्रण करता हूं, अब राधासे न मिलूंगा, उसे सूरत तक न दिखाऊंगा; किन्तु जब मौक़ा मिलता है, चुपचाप उधर जा निकलता हूं, जैसे कभी रूठा ही न था, कभी कोई बात ही न हुई थी। सोचता हूं, यदि वह न होती, तो क्या जगतकिशोर जगतकिशोर होता, कहीं एफ़. ए. में एड़ियां रगड़ता, बी. ए. में अव्वल दर्जेमें न आता। उसे देखकर, उससे बातें करके शरीरमें शक्ति-सी आ जाती है। इतना पढ़ता हूं, फिर भी नहीं थकता। दसवींमें मरकर पास हुआ था, परन्तु एफ़. ए. में ज्यों ही उसे देखा, ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसीने मृत शरीरमें जान फूंक दी है। इतना परिश्रम आयु-पर्यन्त न करता। वह भी पढ़ती, मैं भी पढ़ता। उसके साथ अध्ययनमें कितना आनन्द आता, कितना याद होता ! पर नहीं, उसे अभिमान हो गया है। मिथ्या दम्भ अब उसे प्रिय लगने लगा है। उसे निश्चय है कि मैं उसके बिना नहीं रह सकता। मानों यदि वह न होगी, तो एम. ए. पास ही न कर सकूंगा। नहीं तो वह मेरी साधारण-सी इच्छाको यों न ठुकरा देती।

सबेरे जब उसके मकानपर गया, तो वह चित्र बना रही थी। मैं बैठकमें बैठनेके बदले सीधा वहां चला गया। उसके पिता तहसीलदार थे, अब रिटायर हो गये हैं। उन्होंने लाहौरमें मकान बनवाया है। मेरे पिताके

वह घनिष्ट मित्रोंमेंसे हैं। एक दूसरेके घरमें आना-जाना खुला है। मैं उनके घर बेरोकटोक चला जाता हूं। वहां भी चला गया। वह दूसरी ओर मुँह किये एक चित्र बनानेमें व्यस्त थी। किवाड़ खुलनेकी आहट पर उसने चित्रको दीवारकी ओर कर दिया। पल-भरके लिए उसके मुखपर क्रोधकी झलक दिखाई दी; पर मुझे देखते ही वह मुस्कराकर उठ खड़ी हुई। मैं सूट पहने हुए था, इसलिए दरीपर न बैठा। वह भागकर कुर्सी उठा लायी। मैं बैठ गया। वह मुस्करा दी।

मैंने कमरेमें इधर-उधर निगाह दौड़ायी। हर दीवार पर एक नदो सुन्दर तस्वीरें थीं! मैंने पूछा—"यह सब तुम्हारी कलाकी करामात है राधा?"

"सुनती तो हूँ" उसने अत्यन्त मीठे स्वरसे कहा, गरदनको तनिक-सा हिलाया और मुस्करा दी। मैंने भी मुस्करा दिया।

"अभी किस चीजमें यों निमग्न थीं?"

"चित्रमें।"

"मुझे दिखाओ।"

"प्रदर्शनीमें देखना।"

"कौन-सी प्रदर्शनी?"

"विश्वविद्यालयकी।"

"तो यों कहो, इस बार यूनीवर्सिटीकी नुमायशमें प्रथम रहनेके इरादे हैं!"

राधाका चेहरा उतर गया, कहने लगी—"ऐसे भाग्य कहां?"

मैंने चित्रोंपर एक दृष्टि डाली और बोला,—"मैं शर्त लगाता हूं, तुम सर्व प्रथम रहोगी, तुमसे कोई न जीत सकेगा।"

"और लालचन्द?"

"उसकी तुम्हारे सामने क्या हस्ती है!"

"नहीं," उसने एक निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"लालचन्द हुआ, तो उससे बाजी ले जाना टेढ़ी खीर है।"

सहसा मैंने कुछ सोचकर कहा,—"वह भाग ले भी सकेगा?"

"क्यों? उसके मार्गमें कौन-सी बाधा है?"

" उसने व्यवसाय जो आरम्भ कर दिया है ।"

" फिर क्या हुआ, वह एक साल तक कम्पार्टमेण्टमें तो बैठ सकता है।"

" तो भी " मैं बोला, " उसकी कलाके बारेमें तुम अत्युक्ति से काम लेती हो । मैं कहता हूं लालचन्दने एक चित्र भी नहीं देखा, नहीं तो वह चित्रकलाका विचार ही छोड़ देता ।

" रहने भी दो । मेरी प्रशंसासे तुम्हें क्या मिल जायेगा ? "

" मैं झूठी प्रशंसा नहीं करता, सत्य कहता हूं।" मैंने गम्भीरतासे कहा,

वह केवल हँस दी और फिर अन्यमनस्कतासे खिड़कीके बाहर देखने लगी । मैं उसका एक चित्र देखनेमें निमग्न हो गया । यह उसका अपने हाथसे बनाया हुआ अपना चित्र था ।

" राधा ! " मैंने कुछ क्षणोंके बाद कहा ।

" हां । " वह चौंककर बोली ।

" यह चित्र मुझे दे दो । "

उसने चित्रका मुँह कोनेकी ओर कर दिया और बोली—" तुम्हें नहीं मिल सकता । "

मैंने उसकी आंखोंमें आंखें डालीं, देखनेका प्रयास किया कि वह हँस तो नहीं रही है; परन्तु वहां गम्भीरता थी, उसकी आंखें शान्त थीं और ओंठ एक दूसरेसे सटे हुए थे । मैंने फिर पूछा—" नहीं मिल सकता ? "

" बीस बार कहती हूँ, नहीं, नहीं, नहीं; नहीं मिल सकता । "

मुझे दुःख हुआ और झुंझला उठा । वह मेरे साथ पढ़ती रही थी । तीन सालसे हम इकट्ठे पढ़ते आये थे । मैं प्रायः प्रतिदिन उसके यहां जाया करता था । वह भी कभी हमारे घर आ जाती थी । मुझे उसका मित्र होनेपर गर्व था । उसकी हर वस्तुको मैं अपनी समझता था; पर आज मालूम हो गया—मैं उसका कोई नहीं । वह मेरी खुशीको कुछ नहीं समझती । एक चित्र उससे कहीं अधिक मूल्य रखता है ।

मैंने फिर एक बार उसकी ओर देखा । उसके मुखपर वही गम्भीरता थी । क्रोधसे मैं उठ आया । शायद वह मेरे पीछे आयी; शायद उसने मुझे

आवाजें दीं; शायद उसने कहा—" आओ, चित्र लेते जाओ। " पर मैंने कुछ नहीं सुना, लम्बे लम्बे डग भरता चला आया।

मैंने प्रण कर लिया है, अब मैं उसकी ओर न जाऊंगा। प्रदर्शनीमें भी कोई भाग न लूंगा। उसे मालूम हो जायेगा, मैं उसके बिना भी जी सकता हूँ, पढ़ सकता हूँ और सब काम कर सकता हूं।

राधारानी

यह बेचैनी क्यों ? यदि जगतने मेरा अपमान किया, उसने मेरा चित्र लौटा दिया, तो क्या हुआ—साधारण बात है। पर नहीं, यह साधारण बात नहीं। उसने मेरा निरादर किया है, मेरा अपमान किया है। अगर मैंने हँसी-हँसी-में अपना चित्र न दिया, तो उसे यों क्रोधमें न आना चाहिए था और फिर मैंने अपनी ग़लतीका प्रायश्चित्त कर लिया। क्षमा-मांग ली। चित्र अपने नौकरके हाथ उसके पास भिजवा दिया। उसने उसे भी वापस कर दिया। अहङ्कारकी हद हो गयी। उसने समझा, राधा स्वयं उसे मनाने आयेगी; वह उसके पाँव पड़ेगी। राधा जगतके बिना जी नहीं सकती। वह पागल हो जायेगी, दीवानी हो जायेगी। उसका ख़याल ग़लत है। राधा जगतके बिना भी जी सकती है; अपना काम जारी रख सकती है। वह विष न खा लेगी, आत्म-हत्या न कर लेगी।

फिर यह विह्वलता क्यों ? यह आकुलता कैसी ? सन्तोषका बाँध क्यों टूट गया है ? दिल के समुद्रमें तूफ़ान क्यों उमड़ा आता है।

मैं उसे मनाने न जाऊंगी, कभी भी न जाऊंगी। मैं चित्र बनाऊंगी और अपनी व्याकुलताको उनमें गुम कर दूंगी...पर क्या मैं लालचन्दको जीत सकूंगी ? उसकी सुन्दर कृतियोंको देखकर अब चित्र भेजना ही व्यर्थ है। कितना निपुण कलाकार है! फिर भी कितना सहृदय, कितना सीधा और कितना सरल ! ! बात करता है, तो मिठासकी नदी बहा देता है; मुक्त करता है; तो दूसरेके हृदयको खींच लेता है। जगत-सी उच्छृङ्खलता, उसका-सा ओछापन उसमें नहीं। कल जब माल रोडपर मि. मानकी दूकानपर कुछ ख़रीदने गयी, तो वह वहीं था। मुझे देखा, तो हाथ जोड़कर नमस्ते की और एक ओर हटकर खड़ा हो गया। मैंने पूछा, " सुनाओ लालचन्द, क्या शग़ल

हैं आजकल।" मेरी बातमें व्यङ्ग था। उसने इस ओर ध्यान नहीं दिया और चुपचाप मुझे अपने चित्रागारमें ले गया। वहाँ पहुंचकर मैं आश्चर्यान्वित खड़ी देखती रह गयी। मुझे पहली बार प्रतीत हुआ कि लालचन्द एक महान् पर्वत है और मैं उसकी महत्तापर हैरान रह जानेवाली छोटी-सी घाटी, या वह विशाल वृक्ष है और मैं उसकी छायामें उगा नन्हा सा पौधा।

कमरेमें चारों ओर कलाके सुंदर नमूने टँगे हुए थे। चित्रोंमें जान नहीं थी, पर वह जानदार प्रतीत होते थे; उनके जिह्वा नहीं थी, पर कलाकी जिह्वासे सब कुछ बता रहे थे।

"यह चित्र कौन-सा है?" मैंने एक चौखटेको, जिसका मुंह दीवारकी ओर था, उठाते हुए कहा।

लालचन्दकी दृष्टि धरतीमें गड़ गयी। यह मेरा चित्र था। मैंने क्रोधसे कहा,—"लालचन्द, यह चित्र बनानेसे मतलब?"

वह चुप रहा, फिर बोला—"यह सब तसवीरें कॉलेजके दिनोंकी स्मृति-मात्र हैं राधा, मैंने दूसरे मित्रोंके चित्र बनाये थे, तुम्हारा भी बना लिया।"

"पर मैं तो तुम्हारी मित्र न थी!"

उसने दृष्टि ऊपर उठायी। हमारी निगाहें चार हुईं। उसकी आंखोंमें करुणा थी, व्यथा थी। मेरे दिलको कुछ होने-सा लगा, मैंने चित्र ले लिया और आवेगमें चली आयी। घर आकर मैंने पचास रुपयेके नोट नौकरके हाथ भेजे। उसने उन्हें लौटा दिया और लिखा, "इसका मूल्य कौन दे सकता है?" उसके इस उत्तरमें क्या भेद है? क्या मेरा चित्र उसके लिए मूल्यवान हो सकता है? नहीं यह मेरा भ्रम है। पर उसने मेरा चित्र बनाया ही क्यों; और यदि बनाया था, तो यह उत्तर क्यों लिखा?

दोनों चित्र मेरे सामने हैं। दोनों मेरे ही हैं। एक मैंने बनाया है, दूसरा लालचन्दने। दोनोंमें कितना अन्तर है? एक नक़ली मालूम होता है, दूसरा असली। जगतने मेरे बनाये हुए चित्रकी प्रशंसा की थी, वह उसे ले जाना चाहता था। यदि वह यह चित्र देख लेता, तो इसे देखना भी पसन्द न करता। अब की जगतने फिर चित्र मांगा, तो यही चित्र दूंगी—परन्तु फिर

जगत !--यदि उसने सहस्र बार भी इसे मांगा, तो न दूंगी । दोनों मेरे चित्रागारकी शोभा बढ़ायेंगे। पर मैं यह चित्र बिना मूल्यके न लूंगी । मैं एक बार फिर रुपये और चित्र भेजूंगी और लिख दूंगी कि मैं यह चित्र चाहती हूं, पर बिना मूल्यके नहीं । दोनोंमेंसे एक रख लो–रुपये अथवा चित्र !

लालचन्द

राधा मेरे चित्रागारमें क्या आयी, एक अलौकिक दीप्ति मानों मेरे इस अँधेरे कमरेमें अनायास चली आई । दिलकी तारीक दुनिया जगमगा उठी । निर्जीव चित्रोंमें एक सजीव तसवीर आ खड़ी हुई; कविता, सङ्गीत और माधुर्य्य का एक सुन्दर संसार मेरे इस छोटेसे कमरे में खिंच आया ।

वह मुझसे अपना चित्र छीनकर ले गयी । उसे अच्छा लगा या उसने मुझे उससे वञ्चित करनेकी ठानी, कौन जानें ? पर राधाके चित्र बिना चित्र-शाला ही क्या ? यह तसवीर भी क्या खूब बनी है । मैंने उस दिनका दृश्य खींचकर रख दिया है । यह वह खड़ी है और यह मैं । उसके हाथमें उसका चित्र है, मेरा सिर लज्जासे झुक गया है । इसे प्रदर्शनीमें भेज दूं । इसका शीर्षक रख दूं " पशेमानी "; पर नहीं, उसे दुःख पहुँचेगा । इसे नुमाइशमें नहीं भेजूंगा, कोई और चित्र बनाकर भेज दूंगा । अपने नामसे नहीं, उसके नामसे । पुजारी देवताका मुक़ाबला करे, कैसे हो सकता है ?

उसने चित्र लौटा दिया । उसने लिखा—" मैं इसे मूल्य दिये बिना नहीं लूंगी । " वह क्या जानें, वह मूल्य दे चुकी है । उसे क्या मालूम—मूल्य केवल चांदीके चन्द टुकड़ोंसे ही नहीं चुकाया जाता । उसका एक बार मेरे चित्रागारमें आजाना ही मुझे सदैवके लिए ख़रीदकर ले जाना था । मैंने रुपये रख लिये, मैं उसे नाराज़ करना नहीं चाहता था ।

उसने लिखा—" मैं इस अनुग्रह के लिए आयुभर कृतज्ञ रहूंगी । " जरूर ही यह चित्र वह जगतको भेंट करेगी । मेरी आत्मा मुझ से छीनकर दूसरे का जीवनदान देगी । परन्तु चाहे यह चित्र वह जगतको दे या स्वयं रखे, पर उसने यह तो कहा, " मैं आपकी कलापर मोहित हूं । " आख़िर उसे ज्ञात तो हो गया कि लालचन्द कुछ यों ही नहीं । वह भी कुछ गुण रखता है । यदि जगत एम० ए० भी हो गया, तो उसे कौन पूछेगा । इसके

बिपरीत मेरे चित्रोंकी धूम देश-भरमें मच जायेगी। राधाने भी मान लिया कि उसमें जादू है। शायद हो, परन्तु कौन है जो मुझसे इतने अच्छे चित्र बनवा लेता है? मेरे हाथोंमें जादू भर देता है? तुम्हीं तो हो राधा, तुम्हारी कल्पना ही तो इस परदेमें काम करती है। यदि तुम्हारा ध्यान न हो, तो क्या लालचन्द इतने अच्छे चित्र बना सके? बिलकुल नहीं! तुमपर अपने गुणोंका सिक्का जमानेका ख्याल ही तो था, जिसने उसे चित्रकार बननेके लिए उकसाया। नहीं तो इस समय लालचन्द कम्पार्टमेण्टकी परीक्षाकी तैयारीमें होता, न तुम्हारा ध्यान छोड़ सकता, न पढ़ सकता।

राधारानी

मिनार्ड हॉलमें नुमाइश हो रही है। दूसरे प्रान्तोंके छात्रोंने भी अपने चित्र भेजे हैं, दर्शक काफ़ी संख्या में प्रदर्शिनी देखने जाते हैं। यह सब कुछ मुझे मालूम था, पर मैं नुमाइश देखने न गयी थी, न मैंने अपना चित्र ही भेजा था। नुमाइश का अन्तिम दिन था। मैं अपने कमरेमें निश्चेष्ट बैठी लालचन्दके और अपने चित्रकी तुलना कर रही थी। उसके मुक़ाबलेमें चित्र भेजना ही व्यर्थ था। कहां वह और कहां मैं। उठी, और उठकर मैंने दोनों चित्र एक साथ दीवारपर लगा दिये। उसी समय किवाड़ खुले और बगुलेकी भांति जगत अन्दर दाखिल हुआ। उसका मुख प्रसन्नताके मारे लाल हो रहा था। उसने आते ही मेरे कन्धोंको थपथपाते हुए कहा-" बधाई हो राधा, नुमाइशमें तुम्हारा चित्र सर्वप्रथम रहा। भला तुम वहाँ गई क्यों नहीं? मुझे अभी पता लगा है। पुरस्कार बांटे जानेवाले हैं। प्रिन्सिपल साहबने तुम्हें बुलाया है। कार बाहर खड़ी है, चलो, जल्दी करो।"

वह एक ही सांसमें इतना कुछ कह गया। मैंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। अवाक्—सी खड़ी रह गयी। मेरा चित्र सर्वप्रथम रहा, मुझे पुरस्कार के लिए बुलाया जा रहा है, यह कैसे हो सकता है, यह कैसे हो सकता है? जब मैंने कोई चित्र ही नहीं भेजा। जगत मुझे खींच रहा था। उसे रोककर मैंने कहा—" जगत, मैंने तो कोई चित्र भेजा ही नहीं।"

चलो अब छोड़ो भी। वहां तुम्हारा चित्र सर्वप्रथम आया है और तुम

कहती हो, मैंने चित्र ही नहीं भेजा—वह मुझे खींचता हुआ बाहर ले आया। हम कारमें बैठे, और चन्द मिनट बाद हम मिनार्ड हॉलमें थे। हाल दर्शकोंसे भरा हुआ था। तिल धरनेको भी जगह न थी। पुरस्कार बांटनेकी कार्रवाई शुरू होनेवाली थी। मेरे जाते ही हाल तालियोंसे गूंज उठा। हमारे कालेजके प्रिंसिपलने मेरी कलापर संक्षिप्त-सा व्याख्यान दिया। इसके बाद मुझे स्वर्ण-पदक दिया गया। कुछ दूसरे पुरस्कार भी बांटे गये, फिर सभापति महोदयने चित्र-कलापर अपना भाषण आरम्भ किया।

मैं इस बीचमें दर्शकोंकी दृष्टिका केन्द्र बनी रही। जब अपनी जगह आकर बैठी, तो मेरा दिल जोर-जोरसे धक्-धक् कर रहा था। मेरी हालत उस भिखारीकी-सी थी, जिसे कुटियासे खींचकर सिंहासनपर बिठा दिया गया हो। सोचती थी—किसने मेरे नामसे चित्र भेज दिया, कौन-सा चित्र है जिसपर मुझे पुरस्कार मिला? एक हलका-सा संदेह मेरे मनमें था, यदि मैंने चित्र नहीं भेजा, तो हो सकता है उसने भेज दिया हो। मैं उद्विग्न-सी हो उठी। मुझे सभाकी कार्रवाई बहुत नीरस जान पड़ी। प्रधानजीका भाषण समाप्त होनेको न आता था और मैं चित्र देखनेके लिए उत्सुक थी।

सभा विसर्जित होते ही मित्रों और प्रोफ़ेसरोंने मुझे बधाई दी, परन्तु मैं शीघ्र ही सबसे छुट्टी पाकर जगतको एकान्तमें ले गयी और उससे पूछा—"जगत, वह चित्र तो दिखाओ जिसपर मुझे पुरस्कार मिला है।"

"तुम्हें दिखाऊं?" उसने एक क़हक़हा लगाया, वही तो है जो तुम उस दिन मुझे न दिखाती थीं!"

"वह तो मैंने नुमाइशमें भेजा ही नहीं जगत!"

"अब रहने भी दो", उसने मुझे घर चलनेको खींचते हुए कहा—"चलो घर चलें और पिताजीको यह सुसमाचार सुनायें।"

मैं बोली—"मैं तो सब चित्र देखकर ही चलूंगी, मैंने तो नुमाइश देखी ही नहीं।"

वह बिवश होकर आगे-आगे हो लिया, मैं पीछे-पीछे चली। हम दोनों गैलरीसे गुजरे। दो कमरोंमें चित्र सजाये गये थे। कलाके इतने अच्छे

नमूने मौजूद थे कि मैं हैरान रह गयी। इन सबके सामने अपना चित्र भेजना व्यर्थ ही तो था—दिलमें मैंने सोचा।

एक चित्रके पास जगत रुक गया। बोला—

"राधा, जी चाहता है वे हाथ चूम लूं जिन्होंने यह तसवीर बनायी है, तुमने इतना अच्छा चित्र बनाना कहांसे सीख लिया?"

मैंने देखा, कलाका एक उत्कृष्ट नमूना सामने है। एक चित्रकार चित्र बनाता-बनाता भूल गया है और अपनी प्रियतमाका चित्र बनाने लगा है। मॉडल कुछ और ही था और चित्र कुछ और ही बन रहा था। परन्तु यह चित्र मैं नहीं लालचन्दके हाथसे बना था। मेरा संदेह ठीक ही था। मैंने पहचान लिया था। हां, यह उसीका बनाया हुआ चित्र था।

घर आनेपर सबसे पहले मैं लालचन्दकी चित्रशालामें गयी। वह कोई चित्र बनानेमें निमग्न था। मेरे जाते ही उसने चित्र छुपा दिया। मैंने क्रोधमें कहा—"लालचन्द!"

वह चुप रहा, केवल उसकी दृष्टि ऊपर उठी।

"तुमने मेरे नामपर चित्र क्यों भेजा?"

"मैंने!" हैरानी प्रकट करने की कोशिश करते हुए उसने कहा।

"और किसने? मैं बीसियोंमें तुम्हारा चित्र पहचान लूं, लालचन्द!"

वह निर्निमेष मेरी ओर देखता रहा। मैंने जेबसे स्वर्णपदककी डिबिया निकाली।

"लालचन्द!"

"यह तुम्हारा ही है, इसपर मेरा कोई हक़ नहीं।" यह कहते-कहते मैंने चुपचाप पदक उसके कुर्तेमें टांक दिया।

वह उतारने लगा। मैंने कहा—"इसे वहीं रहने दो, मुझे दुःख होगा।"

एक क्षणके लिए हमारी निगाहें चार हुईं। मेरा दिल धड़कने लगा। मैं ज़्यादा न ठहर सकी, चली आयी।

जगतकिशोर

राधाके असमञ्जसपर भी हमारे माता-पिताने हमें विवाहके अटूट

सम्बन्धमें बाँध दिया। उन्होंने उसकी झिझकको नारि-सुलभ-लज्जा ही समझा। इन दिनों जाने राधाको क्या हो गया था। ब्रिवाहके नामसे उसे चिढ़-सी हो गयी थी। इन्कारपर इन्कार करने लगी। मैं घबरा गया। परन्तु हमारी सगाई हो चुकी थी और वह एक बार इस सम्बन्धमें अनुमति प्रकट कर चुकी थी, अब वह इसका ब्रिरोध न कर सकी। जो थोड़ा-बहुत असमञ्जस उसने प्रकट किया, उसपर किसीने ध्यान न दिया। वह सारा दिन मैंने अपने मित्रोंमें ब्रिताया।

उस दिन मेघ घिर आये थे, मत्त बयार चल रही थी, वृक्षोंकी मरमरमें उल्लास गीत गारहाथा, फूल–फूल, पत्ता-पत्ता नाच उठा था। मैं भी प्रसन्न था, उदास न था कि मुझे बादलोंकी घटाको देखकर दुःख होता और वायुकी सांय-सांय-पर मेरे हृदयसे निःश्वास निकलते। मैं प्रसन्न था और घनके गर्जनमें, वायुकी सांय-सांयमें, पत्तोंकी मरमरमें मुझे अपने उल्लासकी ही प्रतिध्वनि सुनाई देती थी। मित्रोंने उस दिन पीनेके लिए कहा, और मैंने विवश होकर उनका दिल रखनेके लिए एकदो घूंट पी भी। फिर सारा दिन गाना होता रहा। मैं घर जाना चाहता था, पर मित्र कब छोड़ते थे। उनका विचार था कि ब्रिवाहके पश्चात् मित्र मित्र नहीं रहता। कहने लगे, " आज तो जी भरकर देख लेने दो, दोस्त, फिर तो तुम्हारे दर्शन भी दुर्लभ हो जायेंगे। " मैं हँस पड़ा। उनके विचारमें, मैं अब ' मैं ' न रहा था।

सन्ध्याको पाँच बजेके क़रीब मैंने मित्रोंको विदा किया और अन्दर जानेको ही था कि किसीने मुझे एक चित्र और एक तसवीर दी। मैं चित्रको लिये हुए राधाके कमरेमें चला गया। वह अपनी चित्रशालामें बैठी एक चित्र देख रही थी। चित्र उसका ही था, शायद उसने बनाया था या किसी औरने, मैंने कभी पहले उसे न देखा था। उसकी दृष्टि उसमें गड़ी हुई थी और वह मूर्तिवत् निर्निमेष उसे देख रही थी।

मैंने आयी हुई तसवीर और पत्र उसकी गोदमें रख दिये। वह चौंक पड़ी।

" लालचन्दने तुम्हारे ब्रिवाहपर तुम्हें उपहार भेजा है।" उसने तसब्रीर को देखा, उसकी और मेरी दोनोंकी तसवीर थी। आवेशमें उसने उसे चूम

लिया। उसके मुखसे अनायास एक दीर्घ निःश्वास निकल गया। फिर उसका मुख पीला पड़ गया। "उसके हाथोंमें जादू है," उसने लम्बी सांस लेते हुए धीरेसे कहा और चुप हो गयी। कुछ क्षण वह इसी तरह चुप बैठी रही, फिर अचानक मुड़कर उसने कहा...

"जगत!"

"हां।"

"एक बात है।"

"कहो।"

"मानोगे?"

"क्यों नहीं।"

"मैं तुम्हारे साथ, इसी वेशमें, इन्हीं विवाहके कपड़ोंमें लालचन्दसे चित्र खिंचवाना चाहती हूँ। कितना महान् कलाकार है वह।"

मेरे हृदयपर एक हलका-सा बादल एक निमिषके लिए आया और चला गया। मैंने कहा, "वह चित्र भी तो हम दोनोंका है।"

"यह कॉलेजके फ्रोटोमेंसे लेकर बनाया गया है।" उसने कहा, "मैं चाहती हूं, हम इसी वेषमें एक चित्र खिचवायें।"

"बहुत अच्छा, चलो।" और हम चल पड़े।

इन दिनों वह कुछ उदास-सी रहा करती थी और मैं दिलमें उसके हर आग्रहको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा कर चुका था। बाहर निकलकर मैंने शोफ़रको आवाज़ दी। वह बोली, "मैं मोटरपर न जाऊंगी।"

हम पैदल ही चल पड़े। उस समय आकाश सर्वथा बादलोंसे घिर चुका था, बयारका उन्माद पराकाष्ठाको पहुँच गया था। वृक्ष झूम उठे थे! प्रकृतिका कण-कण नाच रहा था। पर हम चुपचाप चले जा रहे थे। मैंने एक-दो बार बातचीत आरम्भ करनेकी कोशिश की पर उसकी उदासीनताने मुझे चुप करा दिया। वर्षाके डरसे बरसाती पहनकर मैं चुपचाप चलने लगा। ऐसा मौसम और यह खामोशी! हृदयसे एक निःश्वास निकल पड़ा। अपनी अवस्थापर दुःख हुआ। ऐसे में तो बोलनेको, गानेको, शोर मचानेको जी चाहता है। और हम दोनों चले जा रहे थे, अलग-अलग और चुपचाप!

दूकान आ गयी। मि. मान बाहर खड़े थे। मैंने पूछा—"मि. लालचन्द अन्दर हैं?"

"वह दूकान छोड़ गये हैं।"

"दूकान छोड़ गये हैं?" राधाने बेताबीसे पूछा।

"जी हां।"

"और चित्र?"

"उन्हें जला दिया गया है।"

राधाने एक लम्बी सांस छोड़ी, और अन्तिम आशाका सहारा लेते हुए पूछा—"अब कहां मिलेंगे?"

"कम्पार्टमेण्टकी तैयारी करने अपने गाँवको चले गये हैं।"

पहेली

रामदयाल पूरा बहुरूपिया था। भेस और आवाज़ बदलने में उसे कमाल हासिल था। कालेज में पढ़ता था तो वहाँ उसके अभिनय की धूम मची रहती थी; अब सिनेमा की दुनिया में आ गया था तो यहाँ उसके चरचे थे। कालेज से डिग्री लेते ही उसे बम्बई की एक फ़िल्म-कम्पनी में अच्छी जगह मिल गई थी और अल्प काल ही में उसकी गणना भारत के श्रेष्ठ अभिनेताओं में होने लगी थी। लोग उसके अभिनय को देखकर आश्चर्य-चकित रह जाते थे। उसके पास प्रतिभा थी, कला थी और ख्याति के उच्च शिखर पर पहुँचने की महत्वाकांक्षा! इसीलिये पात्र की भूमिका में काम करता तो बहुरूप और अभिनय में वह बात पैदा कर देता था कि दर्शक अनायास ही वाह-वाह कह उठते और फिर हफ़्तों उसकी कला की चर्चा लोगों में चला करती।

दो महीने हुए, उसकी शादी हुई थी। बम्बई की एक निकटवर्ती बस्तीमें छोटी-सी एक कोठी किराये पर लेकर वह रहने लगा था। कभी समय था कि वह निर्धन कहाता था, परन्तु अब तो वह धन–सम्पत्ति में खेलता था। रुपये की उसे क्या परवा थी? उसका बिवाह भी उच्च घराने में हुआ था। पत्नी भी सुन्दर और सुशिक्षित मिली थी। जिस प्रकार बादल सूखी धरती पर अमृत की वर्षा करके उसे तृप्त कर देता है, उसी प्रकार निर्धनता से सूखे हुए रामदयाल के हृदयको विधाता ने वैभव की वर्षा से सींच दिया था।

सन्ध्या का समय था। साये बढ़ते–बढ़ते किसी भयानक देव की भाँति

संसार पर छा गये थे । रामदयाल लायब्रेरी में बैठा था। अभी तक कमरे में बिजली न जली थी और वह किवाड़ के समीप कुरसी रक्खे एक लेख पढ़ने में निमग्न था।

चपरासी ने बिजली का बटन दबाया। क्षणभर में रोशनी से कमरा जगमगा उठा। रामदयाल ने रूमाल से ऐनक को साफ़ किया और फिर लेख पर अपनी दृष्टि जमा दी। वह 'नवयुग' का 'महिला--अंक' देख रहा था। अंक देखना तो उसने यों ही शुरू किया था, परन्तु एक लेख था कुछ ऐसा रोचक कि एक बार जो पढ़ना आरम्भ किया तो समाप्त किये बिना जी न माना।

लेख में किसी अभिनेता के अभिनय की विवेचना न थी। छद्मवेष कला पर कोई नई बात न लिखी गई थी। एक सीधा-साधा लेख था, जिसमें नारी स्वभाव पर एक नूतन दृष्टि-कोण से प्रकाश डाला गया था। एक सर्वथा नई बात थी। लिखा था--

"स्त्री प्रेम की देवी है। वह अपने प्रिय पति के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर सकती है। वह उसकी पूजा कर सकती है, पर यदि उसका पति उसके शुद्ध प्रेम की अवहेलना करे; उसकी मुहब्बत को ठुकरा दे तो अवसर मिलने पर वह अपने प्रेम की तृषा बुझाने के लिए किसी दूसरी चीज़ को ढूँढ़ लेती है—चाहे वह चल हो वा अचल सजीव हो वा निर्जीव! यही प्रकृति का नियम है।"

रामदयाल उठा और गम्भीर मुद्रा धारण किये हुए पुस्तकालय के बाहर निकल आया।

सड़क रोशनी से नव-वधू की भाँति सज रही थी। रामदयाल अपने हृदय की गति के समान धीरे-धीरे चला जा रहा था। उसे देखकर कौन कह सकता था कि यह वही प्रसिद्ध अभिनेता है, जो अपनी कला से भारत भर को चकित कर देता है!

[२]

उर्मिला (उसकी पत्नी) अनुपम सुन्दरी थी, कल्पना से बनी हुई सुन्दर प्रतिमा सी! मीठे मादक स्वर की सूरत में विधि ने उसे जादू दे

डाला था। संगीत–कला में उसने विशेष क्षमता प्राप्त कर ली थी और यह गुण सोने में सुहागे का काम कर रहा था। जब भी कभी वह अपनी कोमल अँगुलियों को सितार के परदों पर रखती और कान उमेठकर तारों को छेड़ती तो सोये हुए उद्गार जाग उठते और कानों के रास्ते मिठास और मस्ती का एक समुद्र श्रोता की नस–नस में व्याप्त होकर रह जाता। रामदयाल उस पर जी–जान से मुग्ध था और वह भी उसे हृदय की समस्त शक्तियों से प्यार करती थी। दोनों को एक दूसरे पर गर्व था किन्तु यह सब कुछ स्थायी न हो सका। असार संसार में कोई वस्तु स्थायी हो भी कैसे सकती है? मनोमालिन्य की आँधी ने मुहब्बत के इस छोटे–से पौधे को क्षण भर में बर्बाद कर दिया।

उर्मिला नीचे ड्राइंगरूम में बैठी थी। वह रामदयाल की प्रतीक्षा कर रही थी। सामने के भवन में आज कोई युवक घूम रहा था। वह कुतूहल–वश उसे देख भी रही थी। उसके कान सीढ़ियों की ओर लगे हुए थे; परन्तु आँखे उस युवक को बेचैनी से घूमते देख रही थीं। यह कोठी कई दिनों से खाली थी, परन्तु अब कुछ दिन से किसी ने किराये पर ले लिया था और उसने दो-तीन बार किसी युवक को बिजली के प्रकाश में घूमते देखा था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह बेचैन हो, जैसे आकुलता उसे बैठने न देती हो।

अँगीठी पर रक्खी हुई घड़ी ने टन-टन-नौ बजाये। सामने के भवन में रोशनी बुझ गई। उर्मिला अपने आपको अकेली-सी महसूस करने लगी। उसने सितार उठाया, उसकी कोमल अंगुलियाँ, उसके परदों पर थिरकने लगीं, उसके अधर हिले और दूसरे क्षण एक करुणापूर्ण गीत वायुमण्डल में गूँज उठा—

'सखि इन नैनन ते घन हारे'

स्वर में दर्द था, लोच था और लय थी, सीने में प्रतीक्षा की आग थी। वह तन्मय हो गई, अपनी ही मधुर ध्वनि में खो गई और उसे यह भी मालूम न हुआ कि रामदयाल कब आया और कब तक किवाड़ की आड़ में खड़ा उसे देखता रहा।

वह गाती गई, बेसुध होकर गाती गई। उसकी आँखें सितार पर जमी हुई थीं, उसके कान सितार के मादक स्वर में डूब गये थे। रामदयाल की भृकुटी तन गई और वह चुपचाप मुड़ गया। खाने के कमरे में उसने दासी से खाना मँगाया और खाकर सोने चला गया। उर्मिला गाती रही, अपने दर्द भरे गीत को वायु के कण-कण में बसाती रही। देवता आया और चला गया, पुजारी उसकी पूजा ही में व्यस्त रहा।

दूसरे दिन रामदयाल प्रातः ही घर से चला गया और बहुत रात गये घर लौटा। उर्मिला दौड़ी-दौड़ी गई और गंगासागर में पानी ले आई।

रामदयाल के चेहरे से क्रोध टपक रहा था।

"आप इतनी देर कहाँ रहे ?"

रामदयाल चुप।

उर्मिला ने पानी का भरा हुआ गंगासागर आगे कर दिया। घर में दो दासियाँ तो थीं, परन्तु पति की सेवा वह स्वयं किया करती थी। रामदयाल जब संध्या को घर आया करता तो वह उसका हाथ-मुँह धुलाती, तश्तरी में कुछ खाने को लाती और पंखा करती। रामदयाल ने हाथ न बढ़ाये। वह चुपचाप खड़ी उसकी गम्भीर मुद्रा को देखती रही।

उसका हृदय धड़कने लगा। बीसियों प्रकार की शंकाएँ उसके मन में उठने लगीं। उसने उन्हें बुलाने का इरादा किया, किन्तु झिड़क न दें, यह सोचकर चुप हो रही। आशा ने फिर गुदगुदी की, निराशा ने फिर दामन पकड़ लिया। मनुष्य के हृदय में जब सन्देह उत्पन्न हो जाता है तो निराशा हमदर्द की भाँति समीप आ जाती है और आशा मरीचिका बनकर दूर भाग जाती है। फिर भी उसने साहस करके पूछा—

"जी तो अच्छा है ?"

"चुप रहो !"

"स्वामी ?"

"मैं कहता हूँ, खामोश रहो !"

उर्मिला खड़ी की खड़ी रह गई। निराशा ने आशा को ठुकरा दिया और अब उसमें उठने का भी साहस न रहा।

उसे कल की घटना याद हो आई, परन्तु साधारण-सी बात पर इतना क्रोध ! वह समझ न सकी । उन्हें तो इस बात पर प्रसन्न होना चाहिए था । नहीं, यह बात नहीं, उससे अवश्य कोई दूसरी अवज्ञा हो गई है । हो सकता है, किसी से झगड़ पड़े हों । अथवा कोई दूसरी घटना घटी हो । अशुभ की शंका से उसका मन उद्विग्न हो उठा । वह रामदयाल के चरणों से लिपट गई उसने कहा—" दासी से कोई अपराध हो गया हो तो क्षमा कर दें ।"

रामदयाल ने पाँव खींच लिये, उर्मिला मुँह के बल गिरी । वह सोने चला गया ।

उर्मिला बहुत देर तक उसी तरह बैठी रही और फिर लेटकर धरती में मुँह छिपाकर आंसू बहाने लगी । उसे विश्वास न होता था कि उसके पति ने इतनी सी बात पर उसे नज़रों से गिरा दिया है । रामदयाल के प्रति उसके मन में कई प्रकार के विचार उठने लगे । उसने उन्हें आज तक शिकायत का मौक़ा न दिया था । उसने उनकी साधारण–सी बात को भी सिर–आँखों पर लिया था, फिर यह निरादर क्यों ? यह अवहेलना क्यों ?

उसे शंका होने लगी, ' कोई अभिनेत्री उनके जीवन–वृक्ष को विष से सींच रही है, ' किन्तु दूसरे क्षण अपने इन विचारों पर उसे घृणा हो आई । ग्लानि से उसका सिर झुक गया । रामदयाल चाहे किसी के मोह में फँस जाय, परन्तु उर्मिला के लिए ऐसा सोचना भी पाप है । तो फिर वह अपने पति से इस अन्यमनस्कता का कारण ही क्यों न पूछ ले; क्या उसे इस बात का अधिकार नहीं ? वह सहधर्मिणी नहीं क्या ? अर्धांगिनी नहीं क्या ? यह सोचकर वह उठी । उसके शरीर में स्फूर्ति का संचार हो आया । वह जायगी, अपने पति से इस क्रोध का कारण पूछकर रहेगी और उस समय तक न छोड़ेगी, जब तक वे उसे सब कुछ न बता दें, या अपनी भुजाओं में भींचकर यह न कह दें–मैं तो हँसी कर रहा था !

उसके मुख पर दृढ़ संकल्प के चिह्न प्रस्फुटित हो गये । वह उठी और धीरे–धीरे रामदयाल के कमरे में दाखिल हुई । वह लेटा हुआ था । उसके चेहरे पर एक गम्भीर मुस्कराहट खेल रही थी–अव्यक्त वेदना की अथवा गुप्त उल्लास की, कौन जानें ?

उर्मिला के आते ही वह उठ बैठा। उसने कड़ककर कहा—"मेरे कमरे से निकल जाओ, जाकर सो रहो, मुझे तंग मत करो।"

"क्या अपराध......"

"मैं कहता हूँ, चली जाओ।"

उर्मिला खड़ी की खड़ी रह गई, जैसे किसी जादूगरनी ने उसके सिर पर जादू की छड़ी फेर दी हो। वह स्फूर्ति और संकल्प, जो कुछ देर पहले उसके मन में पैदा हुए थे, सब हवा हो गये। इच्छा होने पर भी वह दोबारा न पूछ सकी। उदासी का कारण पूछना, इस अकारण क्रोध का गिला करना, अपने क़सूर की माफ़ी माँगना, सब कुछ भूल गई। कल्पनाओं के भव्य प्रासाद पल भर में धराशायी हो गये!

वह चुपचाप वापस चली आई और सारी रात गीले बिस्तर पर सोये हुए मनुष्य की भाँति करवटें बदलती रही। नींद न-जानें कहाँ उड़ गई थी?

[३]

समय के पंख लगाकर दिन उड़ते गये।

रामदयाल अब घर में बहुत कम आता था। उर्मिला की सेवा के लिए दो दासियों में एक और की वृद्धि हो गई थी। वह उनसे तंग आ गई थी। वह सेवा की भूखी न थी, मुहब्बत की भूखी थी और मुहब्बत के फूल से उसकी जीवन वाटिका सर्वथा शून्य थी। बरसात के बादल आकाश पर घिरे हुए थे। ठंडी हवा साक़ी की चाल चल रही थी। बाहर किसी जगह पपीहा कूक उठता था। वायु का एक झोंका अन्दर आया। उर्मिला के हृदय में उल्लास के बदले अवसाद की एक लहर दौड़ गई। दिल की गहराइयों से एक लम्बी साँस निकल गई। उसने सितार उठाया और जुदाई का गीत गाने लगी। आवाज़ में दर्द था, ग़म था, और जलन थी। वायुमंडल उसके गीत से झंकृत होकर रह गया। अपने गीत की तन्मयता में वह बाह्य संसार को भूल गई। रात की नीरवता में उसका गीत वायु के कण-कण में बस गया।

सहसा सामने के भवन से, जैसे किसी ने सितार की आवाज़ के उत्तर में गाना आरम्भ किया—

" पिया बिन चैन कहाँ मन को "

राग क्या था, किसी ने उर्मिला का दिल चीरकर सामने रख दिया था। वह अपना गाना भूल गई और तन्मय होकर सुनने लगी। क्या आवाज़ थी, जादू था ? रूह खिंची चली जाती थी। एक महीने से वहाँ कोई सितार बजाया करता था, किन्तु उर्मिला ने कभी उस ओर ध्यान न दिया था। आज न-जानें क्यों, उसका हृदय अनायास ही गीत की ओर आकर्षित हुआ जा रहा था। इच्छा हुई खिड़की में जाकर बैठ जाय, परन्तु फिर झिझक गई, उसी तरह जैसे नया चोर चोरी करने से पहले हिचकिचाता है।

वह खिड़की से झाँकने के लिए उठी। उसे अपने पति का ध्यान हो आया, वह फिर बैठ गई। उसने सितार को उठाया, फिर रख दिया कि गानेवाला यह न समझ ले कि उसके गीत का उत्तर दिया जा रहा है। उठकर उसने एक पुस्तक ले ली और पढ़ना आरम्भ कर दिया, परन्तु पढ़ने में उसका जी न लगा। उसे हर पंक्ति में यही अक्षर लिखे हुए दिखाई दिये—

" पिया बिन चैन कहाँ मन को "

उठकर उसने पुस्तक को फेंक दिया और आरामकुर्सी पर लेट गई। गानेवाला अब भी गारहा था और गीत उसकी नस-नस में बसा जा रहा था। बिवश होकर वह उठी। उसने सितार को उठाया, तारों में झनकार पैदा हुई, परदों पर अँगुलियाँ थिरकने लगीं और वह धीरे-धीरे गाने लगी, शनैःशनैः उसका स्वर ऊँचा होता गया, यहाँ तककि बेसुध होकर पूरी आवाज से वह गा उठी।

" पिया बिन चैन कहाँ मन को "

गीत समाप्त हो गया, वायु मंडल के कण कण पर छाया हुआ जादू टूट गया। वह जल्दी से उठकर खिड़की में चली गई। उसने देखा, युवक सितार पर हाथ रक्खे उसका गाना सुन रहा है।

उसके शरीर में सनसनी दौड़ गई—विजय की सनसनी ! उस समय वह रामदयाल, उसकी मुहब्बत, उसकी जुदाई, सब कुछ भूल गई। उसके

हृदय में, उसके मस्तिष्क में केवल एक ही विचार बस गया—उसने दूसरे रागी को मात कर दिया है !

इसके बाद प्रतिदिन दोनों ओर से गीत उठते और वायुमण्डल में बिखर जाते। दो दुखी आत्माएँ संगीत द्वारा एक दूसरे से सहानुभूति प्रकट करति, दिल के दर्द गीतों की ज़बान से एक दूसरे को सुनाये जाते।

एक महीना और बीत गया। कंपनी एक नई फ़िल्म तैयार कर रही थी और इन दिनों रामदयाल को रात को भी वहीं काम करना पड़ता था। कई रातें वह कम्पनी के स्टूडियो में ही बिता देता। इतने दिनों में वह केवल एक बार घर आया था। उर्मिला का दिल धड़क उठा था। पहली धड़कन और इस धड़कन में कितना अन्तर था। पहले वह इस डर से काँप उठती थी कि रामदयाल कहीं उससे रुष्ट न हो जाय, अब वह इस ख़ौफ़ से मरी जाती थी कि कहीं वह उसके दिल की बात न जान ले, कहीं वह रातभर रहकर उनके प्रेम-संगीत में बाधा न डाल दे।

अक्तूबर का अन्तिम सप्ताह था। रामदयाल घर आया। उर्मिला उसके मुख की ओर देख भी न सकी, उसके सामने भी न हो सकी। रामदयाल ने उसे बुलाया भी नहीं। वह दासी से केवल इतना कहकर चला गया—"मैं अभी और एक महीने तक घर न आ सकूँगा। चित्रपट के कुछ दृश्य ख़राब हो गये हैं, उन्हें फिर दोबारा लिया जायगा।" जब वह चला गया तो उर्मिला ने सुख की एक साँस ली, उसके हृदय से एक बोझ-सा उतर गया। वह कोई ऐसा हमदर्द चाहती थी, जिसके सामने वह अपना प्रेम भरा दिल खोलकर रख दे। रामदयाल वह नहीं था, उस तक उसकी पहुँच न थी। पानी उँचाई की ओर नहीं जाता, निचाई की ओर ही बहता है। रामदयाल ऊँची जगह खड़ा था और गानेवाला नीची जगह, उर्मिला का दिल उसकी तानों में फँसकर रह गया।

उस दिन उर्मिला ने एक मीठा गीत गाया, जिसमें उदासीनता के स्थान पर उल्लास हिलोरें ले रहा था, अब वह कमरे में बैठकर गाने के बदले बाहर बरामदे में बैठकर गाया करती थी। दोनों की तानें एक दूसरे की तानों में मिलकर रह जातीं। उनके दिल कबके मिल चुके थे।

संध्या का समय था। उर्मिला बाटिका में घूम रही थी। उसकी आँखें रह-रह कर सामनेवाले भवन की ओर उठ जाती थीं। उस समय वह चाहती थी, कहीं वह युवक उसकी बाटिका में आ जाय और वह उसके सामने दिल के समस्त उद्‌गार खोलकर रख दे।

वह अकेला ही था, यह उसे ज्ञात हो चुका था, किन्तु कभी उसने दिन के समय उसे वहाँ नहीं देखा था। अँधेरा बढ़ चला और डूबते हुए सूरज की लाली धीरे-धीरे उसमें विलीन हो रही थी। ठंडी बयार चल रही थी और प्रकृति झूम रही थी। उर्मिला के दिल को कुछ हुआ जाता था, कुछ गुदगुदी-सी उठ रही थी। वह एक बेंच पर बैठ गई और गुनगुनाने लगी—

'कब दरस दिखाओगे'

धीरे-धीरे यह गुनगुनाहट गीत बन गई और वह पूरी आवाज से गाने लगी। वह अपने गीत की धुन में मस्त गाती गई। बाटिका की फ़सील के दूसरी ओर से किसी ने धीरे से उसके कंधे को छुआ। उसके स्वर में कम्पन पैदा हो गया और वह सिहर उठी।

"आप तो खूब गाती हैं!"

बैठे-बैठे उर्मिला ने देखा वह एक सुन्दर बलिष्ठ युवक था। छोटी-छोटी मूछें ऊपर को उठी हुई थीं। बाल लम्बे थे और बंगाली फैशन से कटे हुए थे। गले में सिल्क का एक कुर्ता था और कमर में धोती।

उर्मिला ने कनखियों से युवक को देखा। दिल ने कहा, भाग चल, पर पाँव वहीं जम गये। पंछी जाल के पास था, दाना सामने था, अब फँसा कि फँसा।

"आप के गले में जादू है!"

उर्मिला ने युवक की ओर देखा और मुस्कराई। वह भी मुस्करा दिया। बोली, "यह तो आपकी कृपा है, नहीं मैं तो आपके चरणों में बैठकर मुद्दत तक सीख सकती हूँ?"

वह हँसा।

"आप अकेले रहते हैं ?"

"हाँ"

"और आपकी पत्नी ?"

वह एक फ़ीकी हँसी हँसा..."मेरी पत्नी, मेरे पत्नी कहाँ है ? इस संसार में मैं सर्वथा एकाकी हूँ। मुहब्बत से ठुकराया हुआ, यहाँ आ गया हूँ, कोई मुझे पूछनेवाला नहीं, कोई मुझसे बात करनेवाला नहीं।"

युवक के स्वर में कम्पन था। उर्मिला ने देखा, उसका मुख पीला पड़ गया है और अवसाद तथा निराशा की एक हल्की-सी रेखा वहाँ साफ़ दिखाई देती है। उसके हृदय में सहानुभूति का समुद्र उमड़ पड़ा और उसकी आँखें डबडबा आईं।

वह दीवार फाँदकर बेंच पर आ बैठा। उर्मिला अभी तक बैठी ही थी, उठी न थी। वह तनिक खिसक गई, किन्तु उठने का साहस अब उसमें नहीं था।

युवक ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। उर्मिला के शरीर में सनसनी दौड़ गई। उसने हाथ छुड़ाना चाहा। युवक की आँखें सजल हो गईं। उसका हाथ वहीं का वहीं रह गया। वह फिर बोला—

"मेरा विचार था, मैं यहाँ आकर, एकान्त में गाकर अपना दिल बहला लिया करूँगा। मेरे पास धन और वैभव का अभाव नहीं, परन्तु इससे मुझे चैन नहीं मिलता, हृदयको शान्ति प्राप्त नहीं होती। इसीलिए मैं सितार बजाता था! इसकी मन-मोहक झनकार मेरे चंचल मन को एकाग्र कर देती थी, इसमें मुझे अपार शान्ति मिलती थी, परन्तु अब तो सितार भी बेबस हो गई है, वह भी मुझे शांत नहीं कर सकती, मेरी शान्ति का आधार अब मेरे सितार बजाने पर नहीं रहा।

उर्मिला सब कुछ समझ रही थी। उसने फिर हाथ छुड़ाने का प्रयास किया। युवक ने उसे नहीं छोड़ा और विद्युत् वेग से उसे अपने प्यासे ओठों से लगा लिया। उर्मिला के समस्त शरीर में आग-सी दौड़ गई। उसने हाथ छुड़ा लिया और भाग गई।

"फिर कब दर्शन होंगे ?"

उर्मिला ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह अपने कमरे में आ गई और पलँग पर लेटकर रोने लगी। पंछी जाल में फँस चुका था और अब मुक्त होने के लिए छटपटा रहा था।

[४]

कितनी देर तक वह लेटे-लेटे रोती रही। उसे रह-रहकर अपने पति की निष्ठुरता का ध्यान आता था। आत्मग्लानि से उसका हृदय जला जा रहा था। वह इस मार्ग को छोड़ देना चाहती थी। पश्चात्ताप की आग उसे जलाये डालती थी। वह चाहती थी, उसका पति आ जाय, उसके पास बैठे, उससे प्रेम करे और वह उसके चरणो में बैठकर इतना रोवे, इतना रोवे कि उसका पाषाण-हृदय पानी-पानी हो जाय।

उठकर वह रामदयाल के पुस्तकालय में गई। एक छोटी-सी मेज पर एक कोने में उसके पति का एक फ़ोटो चौखटे में जड़ा रक्खा था। उसने उसे उठाया, कई बार चूमा और उसकी आँखों से आँसू बह निकले।

रामदयाल के पैरों की चाप से उसके विचारों का क्रम टूट गया। वह उठी और सच्चे हृदय से उसका स्वागत करने को तैयार हो गई। उस समय उसका मन साफ़ था। विशुद्ध प्रेम का एक सागर वहाँ उमड़ा आ रहा था, जिसके पानी को पश्चाताप की आग ने स्वच्छ और निर्मल कर दिया था।

वह रसोई से पानी ले आई और रामदयाल के सामने जा खड़ी हुई। उसकीं आँखें सजल थीं और मन आशा के धागे से बँधा डोल रहा था। उसने देखा, रामदयाल ने उसके हाथ से गिलास लेकर मुँह धो लिया और फिर उसे कुछ लाने को कहा और जब वह मिठाई ले आई तो रामदयाल ने तश्तरी लेने के बदल उसे अपनी भुजाओं में लेकर उसके मुँह में मिठाई का एक टुकड़ा रख दिया। निमिषभर के लिए उसके मुख पर स्वर्गीय आनन्द की ज्योति रमक उठी। उसने सिर उठाया, देखा—रामदयाल उसी तरह बैठा है और वह उसी तरह गिलास लिये खड़ी है। आशा का धागा टूट गया, मादक कल्पना हवा हो गई। सत्य सामने था—कितना कटु, कितना भयानक ?

रामदयाल ने इशारे से उसे चले जाने को कहा। वह चुपचाप पुतली की भाँति चली आई, मानों वह सजीव नारी न होकर अपने आविष्कारक के इशारे पर चलनेवाली एक निर्जीव मूर्ति हो। अपने कमरे में आकर उसने पानी का गिलास अँगीठी पर रख दिया और धरती पर लोटकर रोने लगी। धरती में, मूक और ठंडी धरती में उसे कुछ आत्मीयता का आभास हुआ, एक बहनापा-सा महसूस हुआ और वह उसके अंक में लिपटकर रोई, खूब रोई, मानो एक दुखी बहन दूसरी दुखी बहन के गले लिपटकर आँसू बहा रही हो।

कई दिन तक वह अपने कमरे के बाहर न निकली। रामदयाल दासी से कह गया था, "मैं और पन्द्रह दिन घर न आ सकूँगा, इसलिए तुम साव-धानी से रहना।" उर्मिला को अपने पति की निर्दयता पर रोना आता था। वह पाप की नदी में बही जा रही थी और उसका पति उसे बचाने को हाथ तक न हिलाता था। वासना की विकराल लहरें लपलपाती हुई उसकी ओर बढ़ी आ रही थीं और उसका पति निश्चेष्ट और निष्क्रिय एक ओर खड़ा तमाशा देख रहा था।

साथ के भवन से बराबर 'गीत उठते थे। उनमें उल्लास की तानें न होती थीं, दुःख और वेदना का बाहुल्य रहता था। उर्मिला की संगतप्रिय आत्मा तड़प उठती थी, परन्तु वह अपने कमरे के बाहर न निकलती थी।

शाम का वक्त था। गानेवाला प्रलय के गीत गा रहा था। उसका एक-एक स्वर उर्मिला के हृदय में खुबा जा रहा था। वह उठी, ड्राइंग रूम में आ गई। उसका सितार असहाय भिखारी की भाँति एक ओर पड़ा था। उस पर मिट्टी की एक हल्की-सी तह जम गई थी। उसने उसे कपड़े से साफ़ किया और एक आवेश से चूम लिया। उसकी आँखों में आँसू छलक आये। गानेवाला गा रहा था।

'क्यों रूठ गये हमसे'

उर्मिला ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और उसकी कम्पित उँगलियाँ सितार के परदों पर थिरकने लगीं। बेख़याली में यही गीत उसके सितार से निकलने लगा—

'क्यों रूठ गये हमसे'

वह गाता हुआ अपने भवन से उतरा और फ़सील को फाँदकर उर्मिला के पास आ बैठा। वह सितारा बजाती रही और वह गाता रहा।

दोनों अपनी कला के शिखर पर जा उड़े। उसने शायद इससे पहले इतना अच्छा न गाया हो। और उसने शायद इससे पहले इतना अच्छा सितार न बजाया हो। गीत की लय और सितार की झनकार मानों रूठे हुए दिलों को एक होकर एकता का मार्ग बता रही हों।

गीत समाप्त हो गया। उर्मिला युवक की भुजाओं में थी। अपने विशाल वक्षःस्थल से भींचते हुए युवक ने उसे चूम लिया। उर्मिला चौंकी, युवक पीछे हटा। वह उठकर भागने को हुई। युवक ने उसे बिठा लिया और अपनी लम्बी मूछें उतार दीं और सिर के लम्बे-लम्बे बाल दूर कर दिये।

गोधूलि का समय था। सन्ध्या के क्षीण प्रकाश में उर्मिला ने देखा— वह अपने पति के सामने बैठी है। वह हँस रहा था, परन्तु उर्मिला के मुख पर मौत की-सी नीरवता थी।

"देखा हमारा बहुरूप उम्मी" रामदयाल ने विजयी खुशी में उसे अपनी ओर खींचते हुए कहा। कौन जानता है कि वह "नवयुग" में छपे लेखकी परीक्षा न कर रहा था!

"अभी आई" और उर्मिला ऊपर अपने कमरे को भाग गई।

कुछ समय बीत गया। रामदयाल अपने विचारों में निमग्न रहा। उसके विचारों का क्रम उर्मिला के कमरे से आनेवाली एक चीख़ से टूट गया। वह भागकर ऊपर पहुँचा। देखा उर्मिला के कपड़ों को आग लगी हुई है और वह शान्त भाव से जल रही है।

रामदयाल काँप उठा। उसने उसे बचाने का भरसक प्रयत्न किया, पर वह सफल न हुआ। वह बच न सकी।

श्मशान में उर्मिला का जला हुआ शव जल रहा था और मूर्तिवत् बैठा रामदयाल अपनी मूर्खता और नारी-हृदय की इस पहेली पर विचार कर रहा था।

जुदाई की शाम की गीत

"रामानन्द जानते हो?"—मेरे साथी ने मेरे बाज़ू को छूते हुए धीरे से कहा—पहाड़ी के इस टुकड़े से किस कथा का सम्बन्ध है?"

मैंने पीछे की ओर देखा। पुल के साथ पगडण्डी का एक भाग खड्ड की ओर बढ़ गया था और उस पर एक युवक और युवती बैठे थे।

हम जिस जगह जा रहे थे उसके दाईं ओर सुरम्य घाटी थी और उसके परे छोटी-सी सुन्दर पहाड़ी, जिससे सूर्य की किरणें गले मिल-मिल कर बिदा ले रही थीं। बाईं ओर भयानक पहाड़ खड़ा था, जिस पर निरन्तर वर्षा के कारण काही-सी जम गई थी, और इन दोनों के मध्य एक सिकुड़ी सिमटी पगडण्डी पर हम हाथ दिये चले जा रहे थे। पश्चिम में सूर्य अस्त हो रहा था, पूर्व में शाम इठलाती हुई चली आ रही थी और दाईं ओर पहाड़ी के निचले भाग को उसने अपने अञ्चल में छिपा लिया था। वृक्षों के सिरों पर धूप का राज्य था, उनके पैरों पर छाया का पहरा और अन्धकार प्रकाश को जैसे बरबस बाहर निकाल रहा था, किन्तु शायद वह अन्तिम समय तक अपना शासन छोड़ने को तैयार न था।

मैंने चारों ओर देखा। हम बातों में मग्न पुल को पार कर आये थे। बाईं ओर भयानक पर्वत का सिलसिला पहाड़ी नाले के कारण मध्य ही में टूट गया था और इसके आगे एक गहरी—अत्यन्त गहरी और डरावनी खड्ड थी

यदि मार्ग के उस बढ़े हुए टुकड़े पर खड़े होकर नीचे की ओर दृष्टि डाली जाय तो भय से प्राणों में कँपकँपी पैदा हो जाय। किन्तु वह युवक और युवती इस प्रकार बातों में मग्न थे, मानों सृष्टि के आदि-काल से इसी

प्रकार बैठे बातें कर रहे हों और प्रलय-पर्यन्त अपनी बातें जारी रक्खेंगे। मार्ग का यह टुकड़ा जिसे चट्टान कहा जाय तो अनुचित न होगा, मार्ग से कुछ ऊँचा था। इस पर खड़े होकर प्रकृति के अद्‌भुत शिल्प का भली-भाँति दर्शन किया जा सकता था—एक ओर भयानक पर्वत, दूसरी ओर सुन्दर घाटी, उसके पार सुघर पहाड़ी, सिर पर नीला अम्बर, पैरों के नीचे मीलों लम्बी-गहरी खड्ड और इससे नीचे–बहुत नीचे पानी की एक झिलमिलाती हुई रेखा।

मेरे साथी ने फिर वही प्रश्न दुहराया। मैं कल्पना लोक से वास्तविक संसार में आ गया। मैंने उत्तर दिया— "मुझे मालूम नहीं।"

अब सूर्य अस्त हो गया था। संध्या ने सब ओर पूरी तरह अपना राज्य स्थापित कर लिया था। पहाड़ी पक्षी उसके काले पाश से बचने के लिए अपने वास–स्थानों में जा छिपे थे। हम भी वहीं पगडण्डी के किनारे बैठ गये। सन्यासियों का कौन ठिकाना! जहाँ रात हो गई वहीं चादर बिछा कर लेट रहे। फिर उन सन्यासियों की तो बात ही न पूछो जिन पर यात्रा का भूत सवार हो। मेरे साथी का नाम था भूमानन्द, उसने दायें हाथ को अपने घुटने पर रख कर बायें हाथ से मेरे कन्धे का सहारा लेकर कहना आरम्भ किया।

[२]

"दस वर्ष हुए..."

"एक बार खाँस कर फिर वह बोला—"यह उस समय की बात है जब पहली बार मैंने माया के जाल को तोड़कर सन्यास लिया था और नगर को छोड़कर भ्रमण करते-करते इस गाँव में आ बसा था। यहां आकर मेरा जी भी लग गया था। तुम तो जानते हो रामानन्द, बाल्यकाल ही से मुझे प्रकृति का सौंदर्य मुग्ध करता रहा है। उस समय प्रकृति की देवी अपने यौवन पर थी और शायद यही कारण था कि राजरानी जब एक बार अपने बीमार पिताके साथ यहाँ आई तो फिर लाहौर का मनोरंजन उसे अपनी ओर आकर्षित न कर सका। लाहौर आग था, भक्तिपुर जल। वहाँ उसकी तपी हुई आत्मा को शान्ति न मिल सकती थी। यहाँ शान्ति के साथ ही आत्मा की प्यास भी बुझ गई थी। प्यासी हिरणी अमृत-समान जल के सरोवर पर पहुँच कर वहीं की हो रही थी।

" उसका पिता जमींदार था। लाहौर से मीलों दूर यह पहाड़ी गाँव उसकी पैत्रिक संपत्ति में शामिल था। राजरानी अपने पिता की एक-मात्र संतान थी। यद्यपि उसकी शिक्षा-दीक्षा लाहौर में उत्तम रीति से हुई थी तो भी उसके पिता उसे किसी अच्छे वर के हाथों न सौप सके थे। इससे पहले कि वे किसी जगह उसकी बात पक्की करते, बीमारी ने उन्हें आ घेरा। अपनी मृत्यु से दो मास पहले वे उसे लेकर इस गाँव के अपने पहाड़ी बँगले में आ गये थे। प्रकृति के मनोहर दृश्य रोगी के मन को शान्ति तो दे सकते हैं, उसे मौत के भयानक पञ्जों से नहीं बचा सकते। और बर्फ़ से लदी हुई पहाड़ों की सफ़ेद और सुनहरी चोटियाँ, तराई में वृक्षों की हरियाली, खड्ड में पानी की झिलमिलाती हुई रेखा, मेघों और पहाड़ियों का परस्पर आलिङ्गन भयानक मृत्यु के कठोर दिल को मोम नहीं कर सकते रामानन्द और राजरानी का पिता यहाँ आकर दीर्घ काल तक जीवित न रह सका। दो महीने बाद ही उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

" राजरानी लाहौर नहीं गई, और न मैं ही कहीं जा सकता। वृक्षों की घनी छाया में एक सोफ़े पर बैठकर जब वह ऊँचे स्वर से किताब पढ़ा करती थी तब मैं उसे उस कुञ्ज से–भूमानंद ने सामने की पहाड़ी पर एक घने कुञ्ज की ओर संकेत करते हुए कहा–देखा करता। जब वह हारमोनियम के बारीक़ सुरों के साथ अपना स्वर मिला कर

" भगवान् मेरी नैया उस पार लगा देना "

गाती तब मैं अपने स्थान पर बैठा झूमा करता और मेरे साथ पुष्प, लतायें और सारे का सारा कुञ्ज इस संगीत के प्रभाव से झूम उठता।

" तुम कहोगे " भूमानन्द ने तनिक रुक कर कहा कि संन्यासी होकर माया के पाश को काट कर भी इतनी ममता, इतनी मोह ! मैं कहूँगा, हाँ, संन्यासी होकर भी। यदि मैं संन्यसी न होता राजरानी और इसी तरह गाती तो मैं उस अद्‌भुत मूर्ति की पूजा न कर सकता, उसे देखकर परमात्मा की कारीगरी पर मुग्ध न हो सकता। मैं उसे और ही नजरों से देखता–जिनमें अनुराग न होता, भक्ति न होती, परन्तु लालसा होती, तृष्णा होती और होती वासना की झूलत। "

"वैसे भी," भूमानन्द ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"यह स्थान ही ऐसा है कि यहाँ आकर किसी का जी प्रलय-पर्यन्त जाने को नहीं चाहता। कोई निर्धन हो तो पेट की ज्वाला शान्त करने के लिए शहरों की ख़ाक छाने। राजरानी के पास सब कुछ था। उसे किस बात की कमी थी? दौलत उसकी लौंडी थी, ऐश्वर्य उसका पानी भरता था। फिर वह यहाँ से क्यों जाती? वह अपनी मां और नौकर-नौकरानियों के साथ पहाड़ी के उस छोटे-से बँगले में निवास करती थी; वहाँ, जहाँ किसी मकान के खँडहर दिखाई दे रहे हैं, उसका बँगला था और वहीं रह कर वह जादूगरनी इस गाँव के रहनेवालों पर जादू फूँका करती थी।

"वह लाहौर नहीं गई। इसका कारण केवल प्राकृतिक दृश्य ही न थे, कुछ और भी था। उसे माधो ने अपने प्रेम-पाश में जकड़ लिया था!

"माधो था कौन, मुझे कुछ मालूम नहीं, न मुझे यह जानने की आवश्यकता ही पड़ी। कभी ऐसा भी होता है कि दो आदमी एक दूसरे से इतसे घुल-मिल जाते हैं कि परिचय पाने की इच्छा भी नहीं होती। प्रायः वह एक दूसरे के नामों से अनभिज्ञ रह जाते हैं। चाँदनी रातों में माधो मुझे अपनी बाँसुरी की मतवाली तान में प्रीति के गान सुनाया करता था। मुझे उसके गीतों से मतलब था, परिचय से नहीं। मुझे ज्ञात नहीं, वह शिक्षित भी था, या नहीं। हाँ, इतना याद है कि वह अत्यन्त सुन्दर शरीर का पतला-सा युवक था। उसके सिर के बाल लम्बे थे और कंधों पर लहराया करते थे। गले में लम्बा-सा खद्दर का कुरता, मैली-सी धोती और चप्पल पहले वह कभी पहाड़ की इस चोटी और कभी उस चोटी से अपनी बाँसुरी की मधुर ध्वनि से दूर-दूर तक पहाड़ियों को गुँजाया करता। वह इन पर्वतों का रहनेवाला दिखाई न देता था। सुना था कि वह अपने भाई के पास रहता, जो उसके दोषों को जानते हुए भी उससे प्रेम करता। वह कोई काम न करता था—गीत गाता, बाँसरी बजाता और पर्वतों की ऊँची-नीची घाटियों में घूमा करता। मैं उसकी तानों को सुना करता और कदाचित् राजरानी भी सुना करती, क्योंकि वह पढ़ते-पढ़ते थम जाती, गाते गाते रुक जाती, हारमोनियम बन्द कर देती और उसकी बाँसुरी के स्वरों में खो जाती।

" भोला माधो कभी-कभी स्वर्ग और नरक की बातें जानने के लिए मेरे पास आ जाता । उसे स्वर्ग की बातें सुनने में बड़ा रस मिलता। नरक से वह दूर भागता । मुझसे बड़ी सरलता से पूछा करता—गुरु जी वहाँ भी मैं अपनी बांसुरी बजा सकूँगा, वहाँ भी मैं मिन्नो के साथ गीत गा सकूँगा और उसके साथ एक सुन्दर और सुरम्य कुटिया में रह सकूँगा। मैं हँसता और कह देता—क्यों नहीं माधो, वहाँ भी तुम मिन्नो को अपनी बाँसुरी से लुभा सकोगे और उसके साथ एक सुन्दर और सुरम्य कुटिया में रह सकोगे । इस पर वह बाँसुरी को अपने अधरों से लगाकर प्रेम की तान छेड़ता हुआ मिन्नो से मिलने चला जाता ।

" मैंने भी मिन्नो को देखा था । वह एक सरल सीधी पहाड़ी युवती थी। उसकी आँखों में अद्भुत आकर्षण था । वह अपनी गायें चराया करती। माधो भी प्रायः उसके साथ पहाड़ की ऊँची-नीची पगडण्डियों पर ठोकरें खाता फिरता। फिर सन्ध्या को दोनों वापस आते ।

" मिन्नो उसे बहुत चाहती थी। मुझे माधो से मालूम हुआ था कि जिस दिन वह उसके साथ गायें चराने न जाता, उस दिन वह उससे रूठ जाती, आँसू बहाती, और कई-कई दिन तक न बोलती। किन्तु जब प्रसन्न होती तब उसके साथ अपने खेतों की ऊँची मेड़ों पर बैठकर बाँसुरी बजाना सीखती और गई राततक बैठी रहती । जब उसका बूढ़ा बाप क़स्बे से आ जाता तब वह भी घर को चली जाती और माधो भी बाँसुरी बजाता हुआ पहाड़ियों में खो जाता।

" इसी तरह छः महीने बीत गए । इस बीच में मैंने राजरानी को देखा और अनुभव किया वह कुछ बेचैन-सी रहती है। उसके स्वर में दर्द होता, दुःख होता और होती व्यथा जिससे मर्म-भेदी गीत निकलते–बिखरे हुए लय और ताल से स्वतन्त्र !

" माधो की बाँसुरी भी पहले से गीत न गाती। वह उन्मत्तों की भाँति गई रात तक घूमा करता। मन में उथल-पुथल मचा देनेवाली बाँसुरी की ध्वनि अब नीरस-सी जान पड़ती, जैसे वह भी बाँसुरीवाले के साथ ही पागल हो गई हो। माधो को मिन्नो से मिलने का अवसर न मिलता था।

"मिन्नो की दशा दोनों से बुरी थी। वह अब गायें चराने न जाती। खेतों की ऊँची मेड़ों पर बाँसुरी बजाना न सीखती। उसके पिता ने उसे माधो ऐसे बेकार नवयुवक के साथ फिरने से रोक दिया था। उसने कहा था, इससे लगन लगाकर क्या लेगी? सूखी बाँसुरी की तानों से तो पेट न भरेगा? उस दिन से मिन्नो घर की चारदीवारी में बन्द कर दी गई थी। चहकती हुई चिड़िया को निर्दयी ने पिंजरे में बन्द कर दिया था।

"राजरानी को इस बात का पता चल गया। उसने किसी न किसी न किसी तरह माधो को अपने यहाँ नौकर रख लिया। मिन्नो की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसे माधो से मिलने की आज्ञा मिल गई, किन्तु अब माधो का दिल उसके क़ाबू से निकल चुका था। उस पर अब राजरानी का अधिकार था। मिन्नो का स्थान अब उसने ले लिया था। कहने को माधो दस रुपया बेतन पाता था, परन्तु वह तो शाहज़ादों की भाँति रहता था। मिन्नो ने देखा, माधो के लम्बे कुरते की जगह सिल्क की कमीज़ है, खद्दर की मैली धोती की जगह पीले किनारे की रेशमी धोती है, पैरों में नोकदार जूता है। वह रो पड़ी—ग़रीब पहाड़ी लड़की!

"पहले तो माधो कभी-कभी मिन्नो के पास आता भी था, किन्तु एक दिन उसने स्पष्ट कह दिया-राजरानी मुझसे विवाह करना चाहती है। मैं तुमसे नहीं मिल सकता। यह बातचीत मैंने अपने कानों से सुनी थी। मेरे कुञ्ज के पीछे खड़े वे बातें कर रहे थे। तुझे स्मरण है, मिन्नो बहुत देर तक रोती रही थी। जब वह जाने लगा था तब उसने कहा था—माधो मुझे एक दिन दो, एक दिन मेरे साथ सैर करो, मुझे बाँसुरी के दो गीत सुनाओ। इसके बाद तुम्हें मेरी ओर से राजरानी से बिवाह करने की इजाजत होगी। माधो ने उत्तर दिया था-कल का दिन मैं तुम्हारे साथ व्यतीत करूँगा। इसके पश्चात् दोनों अपनी अपनी राह चल दिये थे।

"उस दिन मिन्नो ने माधो को रोककर पूछा था-तुम मुझसे प्रेम करते हो या नहीं? उसका उत्तर था, नहीं। मिन्नो उस दिन को पछताती थी जब उसने माधो से लौ लगाई थी, परन्तु भाग्य में उसके लिए अभी सुख

का एक दिन बाक़ी था। और कौन जानें वह दिन कितना लम्बा हो जाय और उस दिन वह अपने खोये हुए प्रेम को पुनः पा ले !

" रामानन्द ! सच कहता हूँ मुझे मिन्नो की इस बात पर आश्चर्य-सा हुआ। उसे माधो को ठुकरा देना चाहिए था, और मेरी नज़रों में तो माधो और राजरानी दोनों ही गिर चुके थे, वहाँ मिन्नो समाई जाती थी। उसकी अबोध, सरल और उदासीन आकृति अब भी मेरे सामने है, और उसकी अन्तिम करुणामय प्रार्थना अब भी मेरे कानों में गूँज रही है।

" दूसरे दिन माधो आया। मिन्नो हँसती हुई उससे मिली, और उसके हाथ में हाथ लिए चल दी। मैं दोनों के पीछे हो लिया। दिन भर वे इधर-उधर घाटियों में घूमते रहे। हर उस जगह गये, जहाँ उन्होंने प्रेम के दिन गुज़ारे थे। सन्ध्या को वह उसे इस चट्टान पर ले आई। यहाँ आकर उसने माधो से इन पहाड़ियों में गाया जानेवाला प्रसिद्ध विरह-गीत सुनाने की प्रार्थना की। माधो ने बाँसरी को काँपते हुए अधरों से लगाया। विरह-गीत-वायु मंडल में गूँज उठा। और ऐसा जान पड़ा जैसे एक क्षण के लिए मिन्नो के लिए माधो का अनुराग जाग पड़ा।

" गीत के समाप्त होने पर मिन्नो ने उसे अपनी भुजाओं में भींच लिया और बोली-' माधो, मालूम है तुम्हें, इस चट्टान के साथ किस घटना का संबंध है ? '

माधो उसके और समीप हो बैठा, बोला नहीं।

" मिन्नो बोली—' दस वर्ष बीते, यहाँ एक ग्वाला रहता था। उसका नाम था रणिया। सुन्दरता, चुस्ती और चालाकी में वह गाँव के ग्वालों का सिरताज था। कभी-कभी नगर में जाकर मदारी के खेल भी करता था। ऐसी कलाबाजियाँ लगाता कि देखनेवाले चकित रह जाते। पहाड़ी गीत गाने में तो उसे कमाल हासिल था ही, किन्तु नगर से वह वहाँ के गीत भी सीख आया था। और जब गाँव में आकर वह अपने लोचदार स्वर में उन्हें गाता तब सुननेवाले मुग्ध हो जाते। पहाड़ी युवतियाँ बड़े प्रेम से उसके गीत सुनतीं। इन्हीं गीतों के कारण गिरिजा उससे प्रेम करने लगी थी। रणिया ने उसका

प्रेम-पात्र बनने के लिए कई युक्तियाँ लड़ाई थीं, किन्तु कोई सफल न हुई थी। वह एक निर्धन पहाड़ी लड़की थी और रणिया एक मध्यम दर्जे का पहाड़ी युवक, परन्तु न जानें क्यों वह उसकी ओर ध्यान न देती ? एक दिन जब गिरिजा ने समीप से रणिया को देखा, उसकी बेसुध करनेवाली तानें सुनीं तब से उसीकी हो गई। रणिया उस पर मर मिटा। और फिर प्रेम के कई दिन और कई रातें बीत गईं।

"परन्तु यह तन्मयता अधिक समय तक न रह सकी। कागी ने अपने मन से रणिया को अपने वश में कर लिया। वह एक सुन्दर और मालदार विधवा थी। रणिया उसीका हो गया। प्रेम पर धन की विजय हुई। एक दिन उसने गिरिजा को स्पष्ट शब्दों में बता दिया 'मैं कागी से बिवाह करूँगा।' गिरिजा का सरल हृदय इस आघात को न सह सका। वह दीवानी-सी हो गई। आखिर एक दिन वह रणिया के पास गई और उसने उससे प्रार्थना की कि अब जब तुमने मेरे प्रेम को ठुकरा दिया है, अब जब तुमने कागी से बिवाह करने का निश्चय कर लिया है, मुझे एक दिन की भीख दो, सिर्फ़ एक दिन मेरे साथ गुज़ारो।

"रणिया ने भौंहें सिकोड़ लीं और क्षण भर तक सोचता रहा। आख़िर उसने गिरिजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली। गिरिजा के मुख पर फिर लाली दौड़ गई।

"फिर सारा दिन गिरिजा ने उसके साथ बिताया, इस बीच वह कई बार रोई, कई बार हँसी, कई बार मुस्कराई, और जब सन्ध्या तक पाषाण-हृदय रणिया पर उसके प्रेम का कोई प्रभाव न पड़ा और वह उसके साथ पत्थर के बुत का-सा व्यवहार करता रहा, तब गिरिजा उसके साथ सैर करने निकली। शाम को वे इस चट्टान पर बैठे, और गिरिजा ने रणिया से इन पहाड़ियों का वही प्रसिद्ध विरह-गीत सुनाने का निवेदन किया। रणिया गाने लगा:—

हमने कई स्वर्ण प्रभात इकट्ठे मिलकर सूर्य का स्वागत करने में बिताए
और कई सुनहली सन्ध्याएँ इकट्ठे जाकर उसे विदा करने में गुज़ारीं
प्रेम की दुनिया भी कैसी विचित्र दुनिया है !

जिसमें दिन और रात क्षण बन जाते हैं, और प्रातः-सन्ध्या उन क्षणों की सीमाएँ

हमने ये क्षण उल्लास से बिताए हैं
इस छोटे से अर्से में इन घाटियों की सैर की है
बँसरी बजाते रहे हैं
गाएँ चराते रहे हैं

अब प्रेम के सुखद मधुर क्षण बीत गए हैं और विरह की दुखद कटु घड़ियाँ शुरू होंगी—यह तो मौत है–यह तो मौत है–आओ हम असली मौत का स्वागत करें।

" रणिया ने अपना राग समाप्त किया, और इसके साथ ही उसके गले में गिरिजा ने भुजायें डाल दीं। एक बार ऊँचे स्वर से उस गीत का अन्तिम पद गाया। और इससे पहले कि रणिया सँभलता, वह उसे लेकर खड्ड के गहरे अन्धकार में कूद गई।

" मिन्नो ने अपनी कहानी समाप्त करते ही इस गीत के अन्तिम पद को अपने सुरीले स्वर से दुहराया और इससे पहले कि माधो सावधान होता, उसने उसे अपनी भुजाओं से भींच लिया और खड्ड में कूद गई। मैं उठकर उस जगह आया। नीचे खड्ड में दोनों लुढ़के जा रहे थे, जुदा–जुदा नहीं, एक दूसरे को आलिंगन में लिए हुए।

" जीवन में वे जुदा होने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु मृत्यु ने उन्हें चिर-आलिंगन में बाँध दिया था। "

मैं निस्तब्धता से भूमानन्द की कहानी सुन रहा था। उसने कहा–" हाँ तो इस घटना को दस साल हो गये हैं और अब भी पहाड़ी लोगों का यह विचार है कि हर दस साल के पश्चात् इस प्रेम की वेदी पर दो प्रेम-पसारियों की आहुति पड़ती है।

इससे पूर्व कि भूमानन्द अपनी कथा समाप्त करता, हमें एक चीत्कार का शब्द सुनाई दिया। हमने मुड़कर देखा। युवती ने युवक को भुजाओं

में भींच कर खड्ड में गिरा दिया था, और स्वयं भी उसके साथ लुढ़की जा रही थी।

हम दोनों उठ कर उस जगह आये, किन्तु दोनों खड्ड की गहराइयों में डूब गये थे। केवल पहाड़ियों का प्रसिद्ध विरह-गीत वायुमंडल में गूँज रहा था। और अब प्रेम के सुखद मधुर क्षण बीत गए हैं।

वह मेरी मँगेतर थी

सीपुर का अस्थाई बन्दीखाना—ब्लैक-होल (Black Hole) से कहीं अधिक भयानक ! गहरी खड्ड में एक छोटा-सा झोपड़ा, उसमें एक भू-ग्रह सील-भरा और अत्यधिक अँधेरा; शीत उसमें इतना कि तन तो तन, मन-प्राण तक सन्न हो जाएँ। फ़र्श कच्चा दलदल-सा और पिस्सुओं के कुटुम्बों को सदा आश्रय देनेवाला !

इस भू-ग्रह के ऊपर की छत पर सिपाहियों के रहने की अस्थायी जगह थी और उस में, दरवाजे के समीप, नीचे भू-ग्रह को जाने के लिये डेढ़ दो वर्ग ग़ज़ चौड़ा तख़्ता था जो आवश्यकतानुसार उठाया और फिर रखा जा सकता था।

इस झोपड़ी-ऐसी हवालात की चौखट में एक चौकीदार बैठा था और बाहर से एक भंगी, काम करते करते थक कर आग तापने के लिये आ बैठा था। बातें चलने लगी थीं। विषय था उस युवक बन्दी की मूर्खता जो सीपुर का मेला देखने आया था और एक सिपाही से झगड़ने के कारण इस भू-ग्रह में बन्द कर दिया गया था।

चौकीदार को उससे हमदर्दी थी। शायद उसे अपनी कोई पुरानी घटना याद हो आई थी।

" भई, इसमें न सिपाही का दोष है न इस युवक का, " वह कह रहा था " दोष सब बुरे दिनों का है । इसका भाग्य चक्कर में है। सच जानो हम पर भी एकबार ऐसी ही विपत्ति टूटी थी, और तब जो जो यन्त्रणाएँ

हमें सहनी पड़ी थीं, उनकी कल्पना मात्र से रोंगटे खड़े हो जाते हैं।"

भंगी ने, जिसका नाम गोविन्द था, समझ लिया कि चौकीदार अपने जीवन की कोई घटना सुनाने जा रहा है। उसने पाव भी आग के सामने पसार लिये और दत्तचित्त हो कर चौकीदार की कहानी सुनने लगा।

तनिक खांस कर एक दीर्घ निःश्वास लेकर चौकीदार ने कहना आरम्भ किया:—

"हां तो गोविन्द, मेरे साथ भी ऐसी ही दुर्घटना घटी थी और वह भी इसी मेले में। उस समय टिक्का साहब बहुत छोटे थे। अब तो उनकी आयु भी चालीस वर्ष की होगी और मैं तो साठ सत्तर का हो चला हूं। मेला तब भी खूब भरता था। यहां आनेवाली युवतियों की संख्या भी अधिक होती थी और नाच रंग भी खूब होता था।

मैंने मेला कभी न देखा था। था तो इधर ही का रहने वाला, पर बचपन ही से अपने दादा के पास लाहौर चला गया था। वहां पन्द्रह वर्ष एक बाबू के यहां नौकर रहा, फिर उसने मुझे जवाब दे दिया। बात कुछ भी न थी। मुझ से कोई अपराध भी न हुआ था, पर मेरी आयु में बड़ा हो जाना ही मेरे लिये बुरा सिद्ध हुआ। वहां भले आदमी युवक नौकरों को घर में नहीं रखते। मैंने और एक दो जगह नौकरी करने का प्रयास किया और एक दो जगह मैं नौकरी पाने में सफल भी हो गया। पर मेरा मन न लगा। मैं अपने गांव को लौट आया। चित्त उदास था और मन चंचल। इतने दिनों तक शहर के पिंजरे में बन्द रहने के पश्चात् गाँव की स्वतंत्रता में सांस लेने का अवसर मिला था, पर शायद मेरा मन पिंजरे में रहने का अभ्यस्त हो गया था। मुझे उस आजादी में भी नगर की याद आती थी। लेकिन गोविन्द, स्वतंत्रता पाकर उसके गुण शीघ्र ही ज्ञात हो जाते हैं। मैं भी गाँव में आकर खिल उठा। निराशा की सब उदासी और बेचैनी दूर हो गई। यहाँ ठंडे वृक्षों के नीचे ठंडी-ठंडी वायु में बाँसुरी बजाने में वह आनन्द आता था जो लाहौर की सख्त गर्मी अथवा सख्त सर्दी में स्वप्न में भी नहीं आ सकता था। बाँसुरी मुझे दादा ने सिखाई थी। लाहौर में इसे बजाने का अवसर ही न मिलता था और यहाँ गाने-बजाने

के सिवा कुछ काम ही न था। मैं बाँसुरी में फूँक देता तो मीठी मद भरी तान दूर घाटियों में गूँज जाती।

गाँव में आने पर मुझे एक और बात का भी आभास हुआ। वह यह कि मैं अब किसी का नौकर नहीं, किसी की इच्छाओं का ग़ुलाम नहीं, बल्कि स्वतंत्र आज़ाद व्यक्ति हूँ। हमारी थोड़ी-सी भूमि थी, उसको जोतना–बोना मैंने शीघ्र ही सीख लिया। लाहौर में मैं तुच्छ समझा जाता था, यहाँ मैं मरुस्थल का एरण्ड था; जिधर से गुज़र जाता, सब की नज़रें मुझ पर उठ जातीं; सब मुझे श्रद्धा की निगाह से देखते, सब मुझे अपने से बड़ा समझते। जब मैं गाँव में आया तब घर घर मेरी चर्चा हुई। कई युवतियों की नज़रें भी मुझ से चार हुईं। मुझे इन निगाहों में प्रेम के सन्देश भी मिले। पर मेरा मन कहीं नहीं अटका। मैं अपनी खेती-बाड़ी में मग्न और बाँसुरी के गानों में मस्त रहा।

ठंडा शीत बीता और प्राणों को गरमी पहुँचाने वाली बहार आ गई। मई का महीना था। इन दिनों शिमले में वर्षा नहीं होती। मई और सितम्बर दो ही महीने हैं, जिनमें इधर की पहाड़ियों का आनन्द लिया जा सकता है। सूरज में तनिक गर्मी आ जाती है और उसकी सुनहरी धूप से पतझड़ की सिकुड़ी हुई पहाड़ियाँ पत्तियाँ ज़िन्दगी की अँगड़ाई लेकर खिल उठती हैं। इन दिनों मैं काम नहीं किया करता था। खेती-बाड़ी का काम अपने बड़े भाई पर छोड़कर स्वयं ढोर–डाँगरों को लेकर निकल जाता, सारा-सारा दिन गायें चराता। सन्ध्या को दूध दुहता और सँजौली जाकर उसे बेच आता। मुझे केवल प्रातः और सन्ध्या दूध दुहने और बेचने का ही काम करना पड़ता था। अन्यथा मैं सर्वथा स्वतंत्र अपने ढोरों को चराता फिरता। थक जाता तो वृक्ष की घनी छाया में बैठकर बाँसुरी की तान छेड़ देता।

इन्हीं दिनों मूर्तू से मेरी भेंट हुई। सन्ध्या का समय था। मुझे कुछ देर हो गई थी। इसलिए शीघ्र-शीघ्र क़दम बढ़ाता हुआ सँजौली को जा रहा था कि मुझे किसी ने आवाज़ दी "भैया, तनिक ठहरना।"

मैंने पीछे मुड़कर देखा। पास के गाँव से आनेवाली पगडंडी से एक युवती, कन्धे पर दूध के डिब्बे लटकाये, शपाशप बढ़ी चली आ रही है। गले

में धारीदार गबरून की कमीज़, उस पर जाकेट, कमर में काली सुथनी, पाँव में खाकी रँग का फलीट, और सर पर गुलाबी दुपट्टा बाँधे बढ़ती चली आ रही थी। उसकी नाक में छोटी-सी लौंग थी। उस शाम के धुंधलके में मुझे उसकी सूरत बहुत भली लगी—भोली-भाली सीदी-साधी। जब तक वह मेरे बराबर न आगई, मैं उसे मन्त्र-मुग्ध-सा देखता ही रहा।

समीप आने पर ज्ञात हुआ, उसे भी दूध देने सँजौली जाना है और अँधेरा हो जाने से वह तनिक डर-सी रही है। शाहम की वजह से उसकी हिरणी की सी आँखें खुली थीं और जल्दी-जल्दी चलने के कारण विशाल वक्षस्थल धड़क रहा था। मैंने उसे आश्वासन दिया और हम दोनों सँजौली की ओर चल पड़े। कुछ देर चुप चलते रहे, पर सन्ध्या का सुहावना समय, ठंडी-ठंडी वायु, सुन्दर पहाड़ी दृश्य, मार्ग का एकान्त कोई अकेला हो तो चुपचाप लम्बे-लम्बे डग भरता चला जाय। हम दोनों में धीरे-धीरे बातें चल पड़ीं। आरम्भ किसने किया, स्मरण नहीं। परन्तु सँजौली पहुँचते-पहुँचते हम घुल मिल गये। आते समय भी हम इकट्ठे ही आये। उसने कहा था—मैं दूध देकर नल के पास तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करूँगी और जब मैं वापस फिरा तब वह मेरा इंतज़ार कर रही थी। अँधेरा बढ़ चला था, हम निधड़क चलते आए। बातों में मार्ग की दूरी कुछ भी नहीं जान पड़ी जो रास्ता पहले काटे न कटता था अब लमहों में खतम हो गया और जब हम वहाँ पहुँच गये, जहाँ से हमें जुदा होना था, तब मेरा हृदय सहसा धड़क उठा। मैंने साहस कर के कहा—" अँधेरा अधिक हो गया है। मैं तुम्हें तुम्हारे घर तक छोड़ आता हूँ। फिर अपने गाँव को चला आऊँगा।" वह मान गई। मैं उसे उसके घर तक छोड़ने गया। उसके घर के समीप हम जुदा हुए। उसकी आँखों म कृतज्ञता थी। जुदा होते समय उसने धीरे से पूछा—"तुम रोज़ उधर जाते हो क्या?"

"हाँ।"

"और तुम?"

"मैं भी।"

बस इसके बाद वह पीठ मोड़कर अपने घर की ओर चल दी। मैं

जरा तेज़ी से वापस फिरा, पर शीघ्र ही मेरी चाल धीमी हो गई और मैं अपने ध्यान में मग्न चलने लगा। जब चौंका तब देखा कि सँजौली के समीप पहुँच गया हूँ। फिर वापस मुड़ा। घर पहुँचा तो देर हो गई थी। भाई को चिन्ता हो रही थी, मेरे पहुँचते ही प्रश्नों की बौछार उन्होंने मुझ पर कर दी। मैंने कहा—मेरा लाहौर का एक मित्र मिल गया था। उसका घर देखने चला गया था। आते-आते देर हो गई। वे सन्तुष्ट हो गए।

गोविन्द, उस रात मुझे नींद नहीं आई। सारी रात उसकी हिरणी की आँखें, उसकी सुन्दर सलोनी सूरत, उसका सुडौल गुदगुदा शरीर, उसका पहाड़ सा वक्ष, उसकी मस्तानी चाल, उसका मधुर वार्तालाप, उसका सादगी से यह पूछना, "तुम रोज उधर जाते हो क्या?" उसकी हर अदा मेरी आँखों में नाचती रही, उसकी हर बात मेरे कानों में गूँजती रही। एक–दो बार मैंने अपनी परिचित लड़कियों से उसकी तुलना की। कोई असाधारण बात न थी उसमें। शायद उससे भी अधिक सुन्दर रमणियाँ हमारे गाँव में थीं। पर, न जाने उसमें क्या था, उसकी आँखों में क्या जादू था, उसकी चाल में क्या था, उसकी बातों में क्या था? मैं दीवाना-सा हो गया। वह दिन मेरे समस्त जीवन की निधि है, जिसकी स्मृति आज भी मूक और नीरव-एकान्त में मेरी संगिनी होती है।

दूसरे दिन हम फिर उसी जगह मिले। मैंने उससे मिलने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। अपने निश्चित समय पर चल पड़ा, तो भी हम उसी स्थान पर मिल गये। कदाचित् वह भी कुछ देर पहले चल पड़ी थी। पहले दिन की भाँति फिर हम इकट्ठे सँजौली गये, फिर मैं उसे घर तक छोड़ने गया, फिर उसी प्रकार उल्लास से वापस आया। हाँ, आज एक और बात का पता ले आया। वह भी दिन को अपनी गायें चराया करती थी, पर दूसरी घाटी में। दूसरे दिन मेरी गायें भी उसी घाटी की ओर जा निकलीं, जैसे अचानक। पहले वह तनिक झिझकी, परन्तु जब मैंने अपनी गायों को वापस मोड़ना चाहा तब उसने कहा—"इस घाटी में घास अत्यन्त अधिक अच्छी है।" मैं रुक गया, मैं न जा सका, इससे अच्छी घास कहाँ मिलती? इसके बाद हम प्रायः रोज़ साथ ही गायें चराते, साथ ही दूध लेकर सँजौली

जाते और साथ ही वापस आते। मेरी बाँसुरी का शौक़ भी इन दिनों कुछ बढ़ गया। रात को प्रायः मैं अपने इधर की पहाड़ी पर अपने घर के बाहर ऊँची-सी जगह बैठकर बाँसुरी बजाया करता। एक शब्द में कह दूँ, गोविन्द, मुझे उससे मुहब्बत हो गई थी। जिस दिन मैं गायें लेकर पहले पहुँच जाता और वह देर से आती, उस दिन मेरे हृदय में सहस्रों आशंकायें उठने लगतीं। यही हाल उसका था। धीरे-धीरे हमारे प्रेम की बात गाँव में फैल गई। मेरे भाई और उसके माता-पिता को पता चल गया। उन्होंने हमारी सगाई कर दी। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, परन्तु मेरे इस सुख में एक दुःख का काँटा भी था। यह जानकर कि उसे मेरी पत्नी बनना है, मूर्तू ने मुझ से मिलना छोड़ दिया था। मैं व्यर्थ ही अब अपने ढोर लेकर उस घाटी में जाता, जहाँ वह अपनी गायें चराया करती थी। व्यर्थ ही उस चट्टान पर घंटों बैठा रहता, जहाँ हम दोनों बैठे गीत गाया करते थे, व्यर्थ ही रात को बाँसुरी बजाया करता। उसकी सूरत बिलकुल न दिखाई देती। दूध देने को अब उसका छोटा भाई जाता। मैं उससे मूर्तू की बातें पूछा करता। कभी वह सरल अबोध बालक मुझे उत्तर दे देता और कभी मेरी बातें उसकी समझ में न आतीं।

[२]

इसी प्रतीक्षा में कुछ सप्ताह बीत गया। लेकिन मेरी बेचैनी कम न हुई। मैं मूर्तू की सूरत तक को तरस गया, उसे देखने के लिए मेरे सारे प्रयास असफल हुए। दिन खिल उठे। हमारे विवाह की तिथि भी नियत हो गई। परन्तु मेरे हृदय की बेचैनी नहीं घटी।

चौकीदार ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—तुम पूछोगे, गोविन्द, जब मैंने प्रेम की कई सुनहली प्रातः और सन्ध्याएँ उसके साथ गुजारी थीं और उसे अच्छी तरह देखा-भाला था और जब उसे मेरे घर आना ही था तब फिर उसे देखने की बेचैनी क्यों ? मैं स्वयं ठीक तौर पर इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता। वास्तव में जिस दिन हमारी मँगनी हुई थी, उस रोज़ से उसने अपनी सूरत भी नहीं दिखाई थी और मैं सगाई के पश्चात् उससे

कई तरह की बातें करना चाहता था। यह बात जानने के बाद वह किस तरह की बातें करती है, किस प्रकार उसका मुख लज्जा से सुर्ख़ हो जाता है, किस तरह उसका स्वर काँपने लगता है, इन सब बातों का आनन्द लेना चाहता था और भावी जीवन के सम्बन्ध में पहले से ही कुछ बातचीत कर रखना चाहता था। पर उसने जैसे अपने घर से बाहर निकलने की सौगन्ध खा ली थी। मैं लाख इधर-उधर चक्कर लगाता, लाख बाँसुरी में आने का चिर परिचित सन्देश देता, पर वह नहीं आती।

इन्हीं दिनों में सीपी का मेला आ गया। मेरी प्रसन्नता की सीमा न रही। मेले में वह अवश्य जायगी, इस बात का मुझे पूरा निश्चय था और फिर कहीं रास्ते में उसे देख पाना और अवसर पाकर उससे दो बातें कर लेना असम्भव नहीं था। मैं कई दिन पहले से ही मेले की तैयारियों में निमग्न हो गया। दूध बेचने पर जो कुछ बचता उसमें से भैया कुछ मुझे भी दे देते थे। शनैः शनैः यह रक़म जमा होती गई, और मेरे पास पचास रुपये हो गये। मैंने इनसे एक ख़ाकी कोट और बिरजिस बनवाई, अच्छे-से बूट का जोड़ा ख़रीदा, अच्छी-सी धारीदार गबरून की दो कमीज़ें सिलवाई, दो रुमाल लिये, बारीक मलमल का बिजली रंग का साफ़ा रँगवाया और जब मेले के दिन इन सब कपड़ों से सजकर मैंने कुल्लेपर नोकदार साफ़ा बाँधा और उसके तुर्रे का फूल-सा बनाकर शीशे में देखा तब गर्व से मेरा सिर तन गया और चेहरा लाल हो गया।

रेशमी रूमाल को कोट की ऊपर की जेब में रखकर, कमीज के कालरों को कोट पर चढ़ाकर, हाथ में छोटा-सा चमड़ेका हंटर लेकर जब मैं मेले को रवाना हुआ तब गाँव के सब स्त्री-पुरुष मुझे निर्निमेष निगाहों के ताककर रह गये। मुझे देखकर कौन कह सकता था कि यह रोज सुबह-शाम दूध लेकर सँजौली जानेवाला ग्वाला है और इसका काम गायें चराना और उनकी सेवा करना है?

मार्ग में एक पानी की सबील थी। यों ही कच्ची मिट्टी और पत्थरों से तीन दीवारें खड़ी करके उन पर टीन का छप्पर डाल दिया गया था। छप्पर पर बड़े-बड़े पत्थर रखे थे, ताकि तीक्ष्ण वायु से वह कहीं उड़ न जाय।

इस प्रकार बनी हुई वह कोठरी एक तरफ़ सर्वथा खुली हुई थी। कोई किवाड़ इत्यादि भी नहीं थे। इसीमें एक बड़ा-सा पत्थर रखा था, जहाँ एक अधेड़ आयु की स्त्री पानी पिला रही थी। यह मूर्तू के गांव की बुढ़िया तुलसी थी, अपनी चुस्ती और चालाकी के लिए वह आसपास के गांवों में प्रसिद्ध थी। मैं इस सबील पर आकर रुका, प्रकट में कुछ सुस्ताने के लिए, परन्तु मेरी हार्दिक इच्छा यहाँ रहकर मूर्तू की बाट जोहनी थी।

यह सबील सड़क के दाईं ओर केलूके वृक्षों के झुंड में बनी हुई थी। मार्ग के इस ओर कुछ निचाई थी। पहाड़ पर नीचे को सीढ़ियाँ-सी बनी हुई थीं और गायों के इधर-उधर चलने से छोटी-छोटी-सी पगडंडियाँ प्रतीत होती थीं। मैं सबील के एक ओर मार्ग की तरफ़ पीठ करके, नीचे को टाँगें लटकाकर बैठ गया। साफ़ा उतारकर मैंने पास ही पड़े हुए पत्थरों पर रख दिया। परन्तु मुझसे बहुत देर तक इस प्रकार बैठा नहीं गया। मैं तुलसी से कुछ बातें करना चाहता था। पानी पीने के बहाने उठा और वहाँ पहुँचा। पानी पीने ही लगा था कि उसने व्यंग का तीर छोड़ा।

"पानी से प्यास क्या मिटेगी, चाहे मनों पी जाओ। जिसे देखने की प्यास है वह अभी इधर से नहीं गुज़री।"

अब छिपाना व्यर्थ था। मैंने रहस्य-भरे स्वर में धीरे से पूछा—"आज मेला देखने तो जायगी?"

"शायद।"

"सहेलियाँ साथ होंगी?"

"हाँ।"

"फिर मैं कैसे उससे बात कर सकूँगा?"

"केवल देखने से प्यास नहीं बुझ सकती?"

"नहीं।"

बुढ़िया चुप रही।

मैंने गिड़गिड़ाकर पूछा—"तुम प्रबन्ध नहीं कर दोगी?"

बुढ़िया का हँसता हुआ पोपला मुँह मेरी ओर उठा। उसकी आँखें चमकने लगीं। वह बोली—" कैसे ? "

" मैं वहाँ वृक्षों के झुंड में हूँ। तुम कह देना, तुम्हारी एक सहेली वहाँ तुम्हारी बाट जोह रही है। उससे मिल आओ। "

" नहीं, मैं यह नहीं कर सकती। "

मैंने कुछ कहने के बदले जेब से एक रुपया निकालकर बुढ़िया के सामने रख दिया। उसने शायद अपनी सारी आयु में रुपया नहीं देखा था। उसकी बाछें खिल गईं। कहने लगी—" यह कष्ट क्यों करते हो ? भेज दूँगी उसे। आखिर वह तुम्हारे ही घर तो जायगी। "

मेरा हृदय प्रसन्नता से खिल उठा। इतनी जल्दी यह काम हो जायगा, इसकी मुझे आशा नहीं थी। पानी पीकर मैं अपनी जगह आ बैठा और उसके आने की घड़ियाँ गिनने लगा। पाँव की तनिक-सी चाप भी मूर्तू के आने का सन्देह जाग्रत कर देती और मेरी आँखें सबील की ओर उठ जातीं। परन्तु हरबार निराश होकर लौट आतीं। प्रतीक्षा के ये क्षण युगों की नाईं प्रतीत हुए। बार-बार देखता, बार-बार ताकता। कहीं रँगे हुए दुपट्टे की तनिक-सी झलक भी दिखाई देती तो हृदय धड़कने लग जाता। इतना ही अच्छा था कि जहाँ मैं बैठा था, वहाँ से मैं तो सबको देख सकता था, पर मुझे कोई नहीं देख पाता था।

अन्त में मुझे उसकी आवाज़ सुनाई दी। तुलसी उसे मेरी ओर आने के लिए कह रही थी और वह सुन्दरता-सी, सुषमा-सी, भोलापन-सी बनी पूछ रही थी। मेरा हृदय धड़क रहा था। कहीं वह अपनी सहेलियों को साथ लेकर ही न आ जाय और इस ' प्रतीक्षा करने वाली सहेली ' का भेद न खुल जाय ! पर नहीं, वह अकेली आई। वायु में उसके सिर का दुपट्टा उड़ रहा था, चमकी का चमचमाता हुआ कुर्ता उड़ रहा था, वह स्वयं उड़-सी रही थी। मेरे समीप आकर वह भौचक्की-सी खड़ी हो गई और एक क्षण बाद स्वर्ण-स्मित उसके अधरों पर चमक उठी और वह वापस मुड़ने लगी। मैंने उसे पकड़ लिया और क्षणिक आवेश से उसे अपने प्यासे

आलिंगन में लेकर उसके अधरों को चूम लिया। उसका मुख अरुण होकर रह गया और वह अपने आपको स्वतन्त्र करने की चेष्टा करने लगी। मैंने अपना रेशमी रूमाल उसकी जेब में ठूँस दिया। वह भाग गई। न मैं कुछ कह सका, न वह। कितनी बातें सोची थीं, कितने मनसूबे बाँधे थे, परन्तु अवसर मिलने पर एक भी पूरा न हुआ।

वह अपनी सहेलियों के साथ चली गई। अपने मुख की लाली, अपना अस्त-व्यस्त दुपट्टा, अपनी घबराहट का कारण उसने सहेलियों से क्या बताया, यह मुझे ज्ञात नहीं। परन्तु उसके चले जाने के बाद मैंने साफ़ा सिर पर रक्खा और वृक्षों के झुंड से बाहर निकल आया। मेरे ओंठ अभी तक जल रहे थे और हृदय धड़क रहा था।

[३]

चौकीदार ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा और बोला—गोविन्द, हमारा गाँव सँजौली और मशोबरे के रास्ते में है। सँजौली वहाँ से कोई दो मील होगी। सबील तनिक आगे थी। मैं तुलसी से बिना मिले ऊपर को चल पड़ा। सड़क पर पहुँचकर मैंने मशोबरे की ओर देखा। मूर्तू अपनी सहेलियों के साथ दूर निकल गई थी। मैं सिर झुकाए चल पड़ा। तबियत में कुछ उदासी-सी छा गई। उस समय मैं इसका कारण न समझ सका, पर बाद की घटनाओं ने बता दिया कि वह उदासी अकारण न थी। मूर्तू से मिलने के पश्चात् मेरे मन में प्रसन्नता का जो तूफ़ान आया था वह उड़-सा गया। होना इसके विपरीत चाहिए था। लेकिन हुआ ऐसा ही। प्रसन्नता से तेज़ चलने के बदले मैं धीरे-धीरे चलने लगा। ख़याल आया, कदाचित् मूर्तू नाराज़ न हो गई हो, कदाचित् वह मेरे इस दुस्साहस से रुष्ट न हो गई हो। अब मेले में उससे आँखें कैसे मिला सकूँगा? दिल में चोर बस गया था और इच्छा होती थी, मेले में न जाऊँ, वापस गाँव को मुड़ जाऊँ। लेकिन नहीं, मुझे तो जाना था, मेरे दिल में तो उसे एक नजर देखने का लोभ बना हुआ था और इस लोभ को मैं किसी तरह संवरण न कर सका—चलता गया।

मेले में पहुँचते-पहुँचते मेरे सब सन्देह दूर हो गये। मूर्तू मुझे मेले से ज़रा इधर ही मिली। वे सब विश्राम ले रही थीं। प्रकट में ऐसा ही प्रतीत होता था, परन्तु मुझे ऐसा जान पड़ा, जैसे वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मुझे देखते ही मुस्करा दी। उसकी आँखें नाच उठीं। मेरा हृदय उल्लास से विभोर हो उठा। उसी समय मेरे गाँव का एक साथी मेरे पास से गुज़रा, मैंने उसे आवाज़ दी। वह वहीं खड़ा हो गया।

"किधर जा रहे हो?" मैंने पूछा।

"मेले को," उसने उत्तर दिया।

"किधर रहोगे?"

"घूम-फिर कर देखेंगे।"

"हम तो भई वहीं वृक्षों के झुंड के पीछे डेरा लगायेंगे। उधर आ सको तो आना।" मैंने मूर्तू की ओर देखकर कहा। बातें मैं साथी से कह रहा था, पर संकेत मूर्तू को था। साथी चला गया, वह मुस्करा दी। उस समय वह चलने के लिए उठी। मैं शीघ्र-शीघ्र क़दम बढ़ाता सीपुर (सीपी) पहुँच गया।

वहाँ पहुँचा तो मेला खूब भर रहा था। मैं थका हुआ था। तनिक विश्राम करने का ठिकाना देखने लगा। आकाश पर बादल छाये हुए थे और मनोमुग्धकारी ठंडी हवा चल रही थी। मैं उस जगह के पीछे, जहाँ आज चाय का ख़ेमा लगा है, जाकर बैठ गया। न जाने कितनी देर तक वहाँ बैठा कल्पनाओं के गढ़ निर्माण करता रहा। लाट अथवा किसी दूसरे पदाधिकारी के आने पर जब बाजों की ध्वनि वायु-मण्डल में गूँज उठी तब मेरी विचार-धारा टूटी। मैं अपनी जान में मूर्तू की प्रतीक्षा कर रहा था। पर यह न सोचा कि जब उसे इस स्थान का पता ही नहीं तब वह यहाँ आएगी कैसे? यह ध्यान आते ही उठा। इधर-उधर घूमता वहाँ पहुँचा, जहाँ स्त्रियाँ बैठी हुई थीं। मूर्तू एक सिरे पर बैठी थी। मैं उसके सामने से गुज़रा, पर उसकी आँखें किसी और तरफ़ थीं। मैं एक ओर हटकर खड़ा हो गया और इस बात की प्रतीक्षा करने लगा कि वह मेरी ओर देखे। उस

समय मैंने देखा कि एक और पुरुष भी मुर्तू की ओर प्रेम-भरी दृष्टि से देख रहा है और इस प्रेम में वासना की पुट अधिक है। वह था कोठी का दारोग़ा। क्रोध और ईर्ष्या के कारण मेरी आँखें लाल हो गईं। परन्तु अपने आपको सँभाल कर मैं वहीं खड़ा रहा। उधर उस नर-पिशाच की निगाह बराबर मूर्तू के सुन्दर मुख पर जमी रही।

अन्त को मूर्तू की आँखें मुझसे चार हुईं। मैंने उसे हाथ से आने का संकेत किया। उसने इशारे से मुझे स्वीकृति दी। कदाचित् दारोग़ा ने भी हमारी इशारेबाज़ी को देख लिया। दूसरे क्षण मैंने उसकी ओर देखा और उसने मेरी ओर। उसकी आँखों में ईर्ष्या थी, शायद द्वेष भी। मैंने इसकी परवा नहीं की और एक बार फिर मूर्तू की ओर देखकर उसके सामने ही वृक्षों की ओट में हो गया। कुछ ही देर के बाद वह आ गई-चंचलता, उल्लास, प्रसन्नता की जीवित मूर्ति। मैंने कहा-"मूर्तू, तुम तो दिखाई ही नहीं देतीं, ईद का चाँद हो गईं।"

"और तुम्हारा कौन पता चलता है? मैं इस झुंड के पीछे देखकर हार गई।"

"पर मैं तो उधर था।"

"मैं कैसे जान सकती थी?"

मैंने उसका हाथ पकड़ लिया। मैंने कहा-चलो छोड़ो इस झगड़े को। इन चार घड़ियों को बहस में क्यों खोयें? हम वृक्षों की ओट में चले गये। समीप ही मेले में आये हुए व्यक्तियों का शोर कुछ स्वप्न के संगीत की भाँति प्रतीत होने लगा। हम अपनी बातों में मग्न मेले और उसमें होनेवाले राग-रंग को भूल गये। उन कतिपय क्षणों में न जाने हमने भविष्य के कितने प्रासाद बनाये। वृक्षों की उस ठंडी छाया में, उस मदमत्त समीर में, उस लालसा-उत्पादक एकान्त में मूर्तू मुझे मूर्तिमान् सुन्दरता दिखाई दी और मैंने एक स्वर्गीय आनन्द से विभोर होकर उसे अपनी ओर खींचा। इसी वक्त हमारे सामने किसीकी गहरी छाया पड़ी। मैंने चौंककर पीछे की ओर देखा। वही दारोग़ा ईर्ष्या और क्रोध से भरी आँखों से मुझे घूर रहा है। मैं तनकर उसके सामने खड़ा हो गया। मूर्तू भी बैठी न रह सकी।

"इस औरत को किधर भगाने की कोशिश कर रहे हो?" उसने मूर्तू का बाज़ू पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए कहा।

मेरी आँखों में खून उतर आया। मैंने कड़ककर कहा—"इसे हाथ मत लगाओ।"

"क्यों, तुम्हारे बाप की लगती है क्या?"

"मेरी मँगेतर है।"

"चल मँगेतर के साले। जरा राणा के पास चल। सब पता लग जायगा कि यह तेरी मँगेतर है या आशना। यहाँ मेला देखने आते हो या बदमाशी करने।" यह कहते-कहते उसने वासनायुक्त दृष्टि मूर्तू पर डाली। वह खड़ी थरथर काँप रही थी। क्रोध के मारे मेरी भुजायें फड़कने लगीं। मैंने एक हाथ से मूर्तू को उसके पंजे से छुड़ाया और दूसरे से एक ज़ोर का थप्पड़ उसके मुँह पर रसीद किया। उसने मुझे गाली दी और हंटर से प्रहार किया और सीटी बजाई। मुझे क्रोध तो आया हुआ था ही। मैंने हंटर उसके हाथ से छीन कर दूर खड्ड में फेंक दिया और कमर से पकड़ कर उसे धरती पर दे मारा।

एक चीख़, और बीसियों लोग उधर दौड़े हुए आये। आगे-आगे कई सिपाही थे। आते ही उन्होंने मुझ पर हंटरों की वर्षा कर दी। मेरा युवा हृदय भी विह्वल हो उठा, उत्तेजित हो उठा। यों चुपके से पराजय स्वीकार कर लेना उसे मंज़ूर न था। मैंने हमला करने वालों में से एक को पकड़ लिया और प्रहारों की परवाह न करते हुए उसे खड्ड में ढकेल दिया। फिर एक दूसरे की बारी आई। उसे भी खड्ड में गिरा दिया। सिपाहियों ने सहायता के लिए सीटियाँ बजा दीं और लोग आ गये। मुझ पर चारों ओर से प्रहार होने लगे। मेरे शरीर से रक्त बह निकला। फिर भी मैं उस समय तक लड़ता गया, जब तक बेहोश नहीं हो गया।

[४]

जब होश आया तब अपने आपको नीचे की हवालात में पड़े पाया।

इस अँधेरे और एकान्त में मेरा दम घुटने लगा। मूर्तू के साथ क्या बीती, इस विचार ने मेरे मन को अधीर कर दिया। भूत में क्या हुआ और भविष्य में क्या होगा, इन विचारों ने मेरे मस्तिष्क को घेर लिया। मेरा अंग-अंग दुख रहा था, परन्तु मुझे अपने दुख की अधिक चिन्ता न थी। दुःख था तो मूर्तू की जुदाई का।

दूसरे दिन सिपाही मुझे राणा साहब के आगे पेश करने को लेने आये, पर मुझसे तो उठा तक न जाता था। तीन दिन तक इसी नरक में पड़ा रहा। फिर कोटी ले जाया गया। वहाँ तनिक आराम आने पर मेरा मामला पेश हुआ। मुझ पर मेले से एक स्त्री को भगाने का प्रयास करने और सिपाहियों को उनके कर्तव्य से रोकने तथा पीटने का अभियोग लगाया गया। शिकायत करनेवाला ही निर्णायक था। मुझे डेढ़ साल की क़ैद की सज़ा मिली। मेरे भाई के सब उद्योग—सब मिन्नतें वृथा गईं। वे मुझसे मिलने तक न पाये।

चौकीदार दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोला—गोविन्द, उन्होंने काठ ही नहीं मार दिया, नहीं तो अगर वे यही दंड देते तो कौन उन्हें रोक सकता था? इस डेढ़ वर्ष में मैंने जो कष्ट उठाये वे अनिर्वचनीय हैं। यह समझलो कि जब मैं डेढ़ साल के बाद अपने गाँव पहुँचा तब मेरा सगा भाई भी मुझे नहीं पहचान सका। मैं कदाचित् डेढ़ साल बाद भी वहाँ से छुटकारा न पाता, यदि वह दरोग़ा वहाँ से रियासत के किसी दूसरे भाग में न बदल जाता। गाँव में आने पर मुझे ज्ञात हुआ कि मूर्तू भी उस मेले से नहीं लौटी। वह अवश्य ही उस दरोग़ा और दूसरे कर्मचारियों की पापवासनाओं का शिकार बनी होगी। इस बात का मुझे पूरा निश्चय था और मेरा यह सन्देह सत्य भी साबित हुआ, जब एक साल पश्चात्, स्वस्थ होने पर, मैं लाहौर गया तो मैंने धोबी-मण्डी में मूर्तू के दर्शन किये। वह एक बहुत छोटे-से घिनौने मकान में रहती थी। मैं उसके पास कई घंटे तक बैठा रहा। उसने मुझे अपनी मर्मस्पर्शी कहानी सुनाई। किस भाँति उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर दारोग़ा अथवा दूसरे कर्मचारियों ने उस पर अनर्थ तोड़े और किस प्रकार अपने अत्याचारों का

भण्डा फोड़ होने के भय से उन्होंने उसे छोड़ दिया। अपने सतीत्व को लुटाकर वह किस प्रकार अपने गाँव में जाने का साहस न कर सकी और किस प्रकार पेट की ज्वाला ने उसे धोबी-मंडी में आ बसने को बाध्य किया।

चौकीदार की आवाज़ भर्रा गई। वह कहने लगा—यह कहते-कहते गोविन्द, वह रो पड़ी। मैं भी रोने लगा। मैंने उसे अपने साथ चलने को कहा, पर वह राज़ी नहीं हुई। आते समय उसने मेरे सामने एक रेशमी रूमाल रख दिया और रोती हुई बोली—

"आज तीन साल से मैंने इसे सँभाल कर रखा है, परन्तु यह पवित्र रूमाल अब मुझ-सी अपवित्र नारी के पास नहीं रहना चाहिए। इसे अपनी नव-बधू को भेंट कर देना।

उसके स्वर में कुछ ऐसी दृढ़ता थी कि मैं उत्तर न दे सका और मैं वहाँ से चला आया। दूसरे दिन वहाँ गया तब मूर्तू वहाँ से जा चुकी थी।

ऊपर कमरे में निस्तब्धता छा गई। कदाचित् कंठावरोध के कारण चौकीदार चुप हो गया था।

कुछ क्षणों के बाद गोविन्द ने पूछा—तो आप इस नौकरी पर कैसे आये?

"यह बात पूछने से क्या लाभ? भाग्य का चक्कर था जो इधर ले आया।"

"फिर भी?"

चौकीदार ने धीरे से कहा—अब तो बताने में कोई हानि नहीं। वास्तव में मैं उस नर-पिशाच दरोग़ा से बदला लेने की प्रबल आकांक्षा से शिमले आया था। मेरे लिए मूर्तू ही सब कुछ थी। मैंने अपने जीवन में केवल उसी से प्रेम किया। इसके बाद मैंने विवाह भी नहीं किया। जिस दरोग़ा ने इस प्रकार हम दोनों को जुदा कर दिया, मैं उसे सस्ते दामों नहीं छोड़ना चाहता था। परन्तु परमात्मा ने मुझे उस नीच के लहू से अपने

हाथ रँगने से बचा लिया। मेरे आने के दो दिन बाद ही वह सड़क पर चला जा रहा था कि वर्षा के कारण पहाड़ का एक बड़ा-सा भाग टूट कर उस पर गिरा और वह अपनी पाप-वासनाओं को अपने साथ लिये सदा के लिए संसार से चला गया। इसके बाद दिल में कुछ और आरज़ू ही न रही, इसलिए यहीं बना रहा।"

गोविन्द ने एक लम्बी साँस ली। उसने कहा—"भाग्य के खेल हैं, चौकीदार जी! जिस प्रकार विधाता रखे, उसी पर सन्तुष्ट रहना चाहिए।"

बाहर सिपाहियों के मज़बूत जूतों की खड़खड़ाहट का शब्द सुनाई दिया और कई सिपाही कमरे में दाखिल होकर सोने का प्रबन्ध करने लगे। कदाचित् गोविन्द उसी समय वहाँ से खिसक गया था।

नरक का चुनाव

बस्ती ग़ज़ां,
जालन्धर।

सुमित्रा,

तुम्हारा खत मिला, बधाई का संदेश भी मिला, आग ही तो लग गई, तुम्हें जलों को जलाने में मज़ा आता है, कोई रोता हो तुम हँस दोगी; किसी की कल्पनाओं का भव्य प्रासाद धू-धू करके जल रहा हो, तुम तमाशा देखोगी। जानें तुम्हें, किसी के दुख-दर्द को महसूस करना कब आयगा? तुमने लिखा—'सगाई पर बधाई हो'। स्मरण होगा, जब यही शब्द मैंने तुम्हारी सगाई पर कहे थे तो किस तरह पुस्तक खींचकर मेरे मुँह पर दे मारी थी। मन में तो लड्डू फूट रहे थे और मुझ पर झुंझला रही थीं। मैं तुम्हें चिढ़ाती न थी, सच्चे दिल से बधाई देती थी, पर तुम मुझे चिढ़ाती हो, मेरे दुर्भाग्य पर हँसती हो। किसी की आशाओं का सुनहरा संसार उजड़ जाए और तुम उसे बधाई दो। तुम से कोई और क्या आशा रख सकता है?

ग़ुस्से की बात नहीं सुमित्रा, मैं भरी बैठी हूं, तुम ने ललता के लिखने पर मुझे बधाई दी, उसमें तुम्हारा दोष नहीं, मेरे माता-पिता का दोष है! भला यह भी क्या मज़ाक़ है कि जगह जगह सगाई करके तोड़ दी जाय और दूसरों को मेरा उपहास उड़ाने का अवसर दिया जाय। कई बार मेरी बात लगी और टूटी। कोई लड़की आयु पर्य्यन्त क्वांरी रह सकती है या नहीं, यह मैं नहीं जानती, पर यदि उसे ज्ञात हो कि सारी आयु उसे क्वांरेपन में ही व्यतीत करनी है तो वह संतोष से बैठ जाए; किन्तु यों, बार बार सगाई करके, उसकी कल्पनाओं की दुनिया बसा-बसा कर उजाड़ देना, कितना

बड़ा अन्याय है ? तुम ही बताओ !

ललता ने तुम्हें वैसे ही लिख दिया, मुझसे उसे जानें किस जन्म का बैर है ? मुझे जलाने में उसे आनन्द आता है । उसकी सगाई नगर के एक नये डॉक्टर से क्या हो गई बस किसी को अपने सामने कुछ समझती ही नहीं, मेरे सम्बन्ध में झूठी बातें उड़ाती रहती है । मेरी निन्दा के नित नये तरीके ढूंढ़ती है, कहीं अगर उसकी सगाई टूट जाए, लड़केवाले इन्कार कर दें, तो फिर पूछूं ? पर सब मुझ जैसी मन्द भाग्य नहीं, सुमित्रा ! विधाता ने मेरे भाल पर तो इसी तरह घुल-घुल कर ख़त्म होना लिख दिया है । मुझसे तीन-तीन वर्ष छोटी लड़कियाँ ब्याही जा चुकी हैं । दो-दो बच्चों की माताएं हैं । सब अपने घरों में सुखी हैं । एक मैं ही अभागिनी उभरी हुई उमंगों को दबाने, हँसने के बदले रोने, मुस्कराने की जगह आंसू बहाने, उजले कपड़ों के स्थान पर मैले वस्त्र पहनने; आंखों को काजल से, मस्तक को बिन्दी से और ओठों को सुर्खी से वंचित रखने के लिए पैदा हुई हूं । जब कभी शान्ता अपना बच्चा ले कर आती है तो मेरा दिल उसे गोद में बैठाने, उसे खेलाने, उसे हाथों में उछालने के लिए आकुल हो उठता है । परन्तु पहले तो वह कई कई महीनों बाद बस्ती आती है और जब आती है तो एक दो क्षण ठहरकर चली जाती है । तुम यहां आतीं, मेरे दुख दर्द की कहानी सुनतीं, मुझे संतोष की राह बतातीं, पर तुम लाहौर की दुनिया में भूल कर रह गईं, तुम्हें 'बस्ती' में बसने वाली एक दुखिया सहेली की याद क्यों आने लगी ?

मैं इस पुराने, तंग, सीलदार कमरे में बन्द कर दी गई हूं; बाहर निकलने की आज्ञा नहीं । सुमित्रा, वे दिन याद आते हैं, जब इकट्ठे पढ़ने जाया करती थीं, बस्ती के बाहर खेतों में बेर तोड़-तोड़ कर खाया करती थीं, गलियों में भागी फिरती थीं, पर अब "चिड़ियों का चम्बा" उड़ गया है और केवल मैं ही पिंजरे में बन्द कर दी गई हूं । तुम तो अपना दिन नई-नई पुस्तकें पढ़ कर काट सकती हो, पर मैं क्या करूं ? कोई किताब मां के हाथों नहीं बची । एक दो छिपा कर रख छोड़ी थीं, सो बार बार पढ़ने से वे भी कंठस्थ हो गई हैं, अब क्या करूं ?

तुम कहोगी, चर्खा कातो, सियो, पिरोओ, लेकिन अब मुझसे यह नहीं होता। पन्द्रह वर्ष कातते–कातते जी उकता गया है; चर्खा देखते ही जहर चढ़ जाता है, सीने–पिरोने से जी घबराता है; लोग कहते हैं, गर्मियों के दिन बड़े होते हैं, पर मुझे तो सर्दियों के दिन भी पहाड़ मालूम होते हैं; कहो किस तरह उन्हें काटूं?

तुम्हारी,

लक्ष्मी।

[२]

बस्ती ग़ज़ां,

जालन्धर।

सुमित्रा प्यारी,

तुम लिखती हो–'यह पाप है'; शायद हो। इस वक्त मुझ में पाप और पुण्य में तमीज करने की संज्ञा नहीं रही। हृदय में एक अग्नि प्रज्वलित है और रोम-रोम उस धधकती आग में जला जाता है। फिर मेरी चेतना, समझ–सोच की मेरी शक्तियां, कैसे स्थिर रह सकती हैं? मैं नहीं जानती पाप और पुण्य क्या है, पर जिसे तुम पुण्य कहती हो, उसका कहीं निशान भी नहीं। क्या कर्म इस बात की आज्ञा देता है कि बाईस–बाईस वर्ष की नौजवान क्वांरी लड़कियों को घर में बिठा रखा जाए, और बीस जगह उनकी बात पक्की करके तोड़ दी जाए, या उन्हें चाँदी के चन्द टुकड़ों के बदले बेच दिया जाए? यह विवाद शुष्क और निरर्थक है, मैं इसमें नहीं पड़ना चाहती। मैं तो तुम्हें यह बताना चाहती हूं कि जो कुछ मैं कर रही हूं अपनी इच्छा से नहीं कर रही, मैं तो ऐसा न करने के लिए बहुतेरे हाथ-पांव मारती हूं, पर कोई है जो मुझे इसमें से बहाए लिए जाता है और मेरे यत्न डूबते हुए व्यक्ति की विवशता से अधिक महत्व नहीं रखते।

यह पाप तो है सुमित्रा, पर ऐसा पाप, जिस पर सहस्रों पुण्य निछावर किए जा सकते हैं। तुम्हारा विश्वास है, इसमें अपमान, निन्दा, बदनामी

के सिवा कुछ हाथ न आएगा। मैं कहती हूं, इनको दूर रख कर ही मुझे क्या मिला? तुम्हारे समीप मैं दोषी सही, पर अपने समीप नहीं। मैं अपनी कोठरी से बाहर नहीं निकली, किसी को लुभाने परचाने नहीं गई। मुहब्बत स्वयं मेरे पास चली आई है और अब अनजाने ही सही, पर यह प्याला हासिल कर लेने के बाद मैं इसे खोना नहीं चाहती। मैं इसे अपने प्यासे ओठों से लगा लूंगी—चाहे फिर यह मेरे लिए कालकूट सिद्ध हो, अथवा जीवनदायक अमृत!

ललता ने तुम्हें जो कुछ लिखा वह मात्र संदेह पर निर्भर है। उस कम्बख्त को मुझे बदनाम करने में आनन्द आता है। असली बात का उसे बिलकुल पता नहीं, पर मैं तुम्हें सब कुछ ठीक-ठीक बताती हूं, तुम से क्या पर्दा?

बात यह है कि दिन रात 'एकान्त कारावास' के इस कष्ट से मैं बीमार पड़ गई। चेहरे का रंग उड़ गया और यह अँधेरी कोठरी जहां मैंने बेचैनी के इतने वर्ष काटे थे, मेरी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगी। वह मृत्यु भी कैसी दुखदायी होती—सुमित्रा, अरमान, इच्छाएं, आकांक्षाएं, सब कुछ लिए हुए मर जाना, रोशनी को तरस-तरस कर जर्जर, अँधेरी कोठरी में खत्म हो जाना, पर भाग्य को मेरा इस प्रकार मरना स्वीकार न था। एक दिन किशोरी लाल के साथ उसके मित्र डॉ. हीरा लाल आए। अभी अभी उन्होंने नगर में प्रैक्टिस शुरू की है। वे एक सम्पन्न घराने के रत्न हैं। पिताजी तो शायद मरते दम तक भी मुझे डॉक्टर के न ले जाते, पर घर में आए हुए व्यक्ति से लाभ न उठाना उनके धर्म में मूर्खता है और इसीलिए बातों बातों में मेरी बीमारी का जिक्र छिड़ गया और निरीक्षण के निमित्त उन्हें मेरे कमरे में लाया गया। पहली बार उनकी ओर मैं देख भी न सकी, मेरी आँखें उठते ही झुक गईं, दिल धड़कने लगा। कुछ देर बाद मैंने फिर अधखुली-सी आँखोंसे उनकी ओर देखा, और फिर जब तक वे मेरा निरीक्षण करते रहे मेरी दृष्टि रह रह कर उनपर पड़ती रही।

इसके बाद प्रतिदिन वे आते और प्रतिदिन उनके दर्शनों से अपने दिल की प्यास को बुझाती। उन्होंने जिस परिश्रम, जिस

निष्ठा से मेरा इलाज किया, मैं ही जानती हूं। मैं मौत की गहरी, अँधेरी खोह में खिंची चली जाती थी, उन्होंने मुझे बचा लिया, अँधेरे से मुझे रोशनी में खींच लाए, इस पर यदि मैं उन्हें प्यार कर रही हूं तो क्या गुनाह है ? और उस सूरत में, जब वे भी मुझ से उपेक्षा नहीं करते ?

तुम्हारी,
लक्ष्मी।

[३]

बस्ती ग़ज़ां,
जालन्धर।

सुमित्रा बहिन,

अब मैं चंगी-भली हो गई हूं। हीरा लाल की दवाओं ने मृतप्राय शरीर में जान डाल दी है, जर्द रगों में खून भर दिया है। अब मैं मैले कपड़े नहीं पहने रहती, काजल भी लगाती हूं, बाल भी सँवारती हूं, शीशा भी देखती हूं, मैले कपड़े स्वास्थ्य के लिए कितने हानिकारक हैं, यह हीरा लाल ने मेरे माता-पिता को समझा दिया है और अब अधिक मूल्य पाने के विचार से गाय को अच्छा चारा मिल रहा है। फिर जब अच्छे कपड़ों की छुट्टी हो गई तो समझो सब बातों की छुट्टी हो गई। कपड़े भी तब ही अच्छे लगते हैं, जब बाल बने हों, चेहरा निखरा हो, हाथ पांव साफ़ हों, मिट्टी की मूर्ति का बनाव श्रृंगार करके कोई क्या करेगा ?

सुमित्रा, अब मेरे चेहरे की जर्दी के स्थान पर सुर्ख़ी आ गई है। शीशा देखती हूं तो कहती हूं—हीरा लाल की औषधियां अमृत से कम नहीं, पर यदि सच पूछो तो दवाइयां तो क्या हीरा लाल ही एक जादूगर हैं। जब उन्हें देखती हूं, उनकी मीठी-मीठी बातें सुनती हूं तो जी जाती हूं, जीवन से प्यार-सा हो जाता और जीने को जी चाहता है। कमरा पहले भी यही था, अब भी यही है, पर अब मैं उदास और बीमार नहीं महसूस करती हूं। जैसे मेरी आत्मा, मेरी रूह मुझे

वापस मिल गई है ! जो भी कोई मुझे देखती हैं, हैरान रह जाती हैं, कहती हैं, इसे बीमारी ने अच्छा कर दिया । ललता तो मुझे देख कर अब जल भी जाती है, उसे अब मैं जहर मालूम होती हूं। शायद मेरे सामने उसका रंग फीका पड़ गया है, पर सुमित्रा इस उल्लास में दुःख का एक कांटा भी है । अब तक तो हीरा लाल मेरी बीमारी के बहाने दोनों वक्त मुझे दर्शन दे जाते थे, कुछ बातें भी हो जाती थीं और यद्यपि प्यास बिलकुल तो न मिटती थी, पर कुछ तृप्ति तो हो जाती थी, पर अब तो मालूम होता है, प्यासा ही मरना पड़ेगा । सोचती हूं, अब क्या करूंगी ? क्या फिर इसी अँधेरे कमरे में घुट-घुट कर मरना पड़ेगा ? ऐसे अच्छे होने से तो बीमार ही भली थी । मैं तो अब इसी चिन्ता से मरी जा रही हूं, अभी हीरा लाल ने आना बन्द तो नहीं किया, पर वे रोज ही ऐसा करने की इच्छा प्रकट करते हैं । वे मुझे सैर करने की आज्ञा दिलाने पर जोर देते हैं । मैं हँस देती हूं । यहां बस्ती में सैर की इजाजत ही कहां मिल सकती है, और यदि मिल भी जाए तो मुझे सैर से क्या ? यदि वे रोज आते रहें तो मुझे आयुपर्य्यन्त इस अँधेरी कोठरी में रहना पसन्द है । अब मेरे अच्छे होते ही मुझे किसी को सौंप देने, मुझे बेच देने की तैयारियां आरम्भ हो गई हैं । सुमित्रा, अच्छी क्या हुई, मुसीबत में फँस गई । रोज बीमार पड़ने की प्रार्थना करती हूं । तुम भी मेरी दुआ के साथ अपनी दुआ मिलादो, जिससे आने वाली विपत्तियों से सुरक्षित रहूं और कुछ दिन, इस नई दुनिया की सैर कर लूं, इसके बाद यदि मौत भी आ जाए तो मैं हजार जान से उसका स्वागत करूंगी ।

तुम्हारी,

लक्ष्मी ।

[४]

बस्ती ग़ज़ां,

जालन्धर ।

सुमित्रा,

अब घर से निकल भागने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं । घर से निकल

भागना–अँधेरी खोह से निकल कर विस्तृत संसार में खो जाना, नाम को त्याग कर गुमनाम हो जाना, परिचितों की संकुचित दृष्टि से निकल कर अपरिचितों की व्यापक निगाहों में समा जाना–यह सब भी क्या अच्छा है ? वहां चले जाना जहां कोई हमें जानता न हो, कोई हमारा परिचित न हो, कोई हम पर उंगली उठानेवाला न हो, और जहां विरह की न समाप्त होने वाली लम्बी घड़ियां प्यार और उल्लास के पलक झपकते बीत जाने वाले क्षण बन जाएँ ।

तुम पूछोगी, तुम्हारा दिल नहीं धड़कता ? तुम्हें भय नहीं लगता ? लेकिन सुमित्रा, मुहब्बत में भय कहां ? और मैं तो कहूँगी, मुहब्बत में लज्जा भी कहां ? दिल में प्यार उपजते ही आँखों की शर्म उड़ जाती है, निगाहें निडर हो जाती हैं, मन विद्रोह कर उठता है, प्रतिदिन कितने क़िस्से पढ़ती हो, कितनी कहानियां सुनती हो, अदालतों में कितने मामले चलते हैं, इन सब में प्रेम ही तो प्रलय मचाता है; फिर विस्तृत वाटिकाओं में, भव्य प्रासादों में, गलियों के अँधेरे कोनों में मुहब्बत ही के खेल तो खेले जाते हैं । कहीं यह अपने प्रशंसनीय रूप में है, कहीं निन्दनीय में, कहीं लज्जा के आवरण में लिपटी हुई और कहीं घूंघट उठाए-बेपर्दा !

तुम कहोगी मैं पागल हो गई हूं, पतित हो गई हूं, मुझे अपना अच्छा बुरा कुछ सुझाई नहीं देता, शायद ऐसा ही हो । एक ओर भलाई है और दूसरी ओर बुराई, पर इस बुराई में भलाई निहित है और उस भलाई में बुराई ! इस ओर मात्र जिसकी कल्पना ही दुखदायी है, दूसरी ओर अपमान है, जिसके कल्पना ही में संसार भर का उल्लास भरा है ।

मैं शर्म रक्खूंगी, क्या होगा, किसी खूसट बूढ़े के हवाले करके भीड़ में झोंक दी जाऊंगी । पिताजी एक मेरी सगाई कर आए हैं, सगाई का सौदा कर आए हैं, और दाम कौन देगा, जो अयोग्य हो, फिर एक अयोग्य मूर्ख की पत्नी बन कर आयुपर्य्यन्त आंसू बहाते रहना और दूसरों से अपने शील-स्वभाव, अपनी लज्जा-शर्म की दाद लेना मुझे नहीं आता । दूसरी ओर हीरा लाल के साथ भाग जाना है । आयुभर प्रीति की सुखमयी गोद में व्यतीत करना है । इसमें निन्दा सही, लांछना और

अपमान सही, पर मैं इसका स्वागत करूंगी। जब मातापिता को अपने बच्चों के मान-अपमान, उनकी इच्छा, आकांक्षा की चिन्ता न हो, तो सन्तान भी विवश है। जब वे अपने कर्तव्य को अनुभव नहीं करते तो सन्तान ही क्यों कर्तव्य के नाम की माला रटती रहे ?

हीरा लाल मुझ पर जान देते हैं। वे मेरे लिए बदनामी की परवाह नहीं करते। उनकी प्रैक्टिस चल निकली है, मेरे लिए वे उस पर भी लात मारने को तैयार हैं, उनकी सगाई हो चुकी है, शादी भी होने वाली थी, पर उन्होंने मेरे लिए उस ओर भी इन्कार कर दिया, तो फिर मैं ही क्यों डरूं, मैं ही क्यों कर्तव्य-कर्तव्य पुकारती फिरूं, मैं ही क्यों बदनामी के भय से मरती रहूं ? पहले भी लोग व्यङ्ग बाण फेंकते हैं, अब उनमें और एक-दो की वृद्धि कर देंगे, पहले वे छिप छिप कर हमारी बुराई करते थे, अब खुल्लमखुल्ला करेंगे, पहले हम सुनते थे तो डरते थे, अब न सुनेंगे, न डरेंगे, ओह कहीं इस बस्ती जालन्धर, पंजाब, से दूर निकल जाएँगे, किसी जंगल में कुटिया बना कर रहेंगे, जहाँ चारदीवारी का बन्धन न होगा, सारे जंगल में हम घूम सकेंगे, जहाँ झरोखों का धीमा प्रकाश न होगा, सारा आकाश रोशनी पहुँचाएगा, जहां भूले भटके आ जाने वाले हवा के झोंके न होंगे, सारी हवा हमारे लिए होगी, मैं लम्बेलम्बे सांस लेकर स्वतन्त्र वायु का सेवन करूंगी, आँखें फाड़ फाड़ कर रोशनी में देखूंगी, धूप में हरी हरी दूब पर लेट जाऊंगी !

तुम्हारी,
लक्ष्मी।

[५]

बस्ती ग़ज़ां,
जालन्धर।

प्यारी सुमित्रा,

अभी अभी हीरा लाल हो कर गए हैं, मुझे पक्की करने आए थे। शादी की रात को हम मकान के पिछवाड़े सीढ़ी लगा कर भाग जाएँगे।

दूल्हा को भी मालूम होगा! आयु के विचार से तो घाट किनारे आ लगे हैं, और चले हैं शादी रचाने! जब अपना-सा मुँह लेकर लौटेंगे तो आनन्द आजाएगा। मैं यहां नहीं हूंगी, नहीं तो वह दृश्य देखने को जी तो बहुत चाहता है। हम आगरे पहुँच कर सिविल 'मैरेज ऐक्ट' के अधीन बिवाह कर लेंगे। मैं बालिग़ हूं, कोई रुकावट नहीं पड़ सकती। आज हीरा लाल प्रसन्न थे, हँस हँस कर बातें करते थे, और मैं बेसुध-सी, मन्त्रमुग्ध-सी, सुन रही थी, कितने सुन्दर हैं वे—कितने सुन्दर! यदि देखलो तो अवश्य ही मेरे भाग्य को सराहो।

एक बात और सुनो, इस ललता को न जाने मेरे साथ किस जन्म का बैर है? मेरी हर ख़ुशी के रास्ते की बाधा बन जाती है। कल हमारे घर गाना हो रहा था। बस्ती की सब लड़कियां मौजूद थीं। मुझे ललता के आने की आशा नहीं थी, पर कल वह भी आई। ख़ूब बनठन कर आई थी। सब पर मानों छाई जाती थी, मानों मुझ पर अपना रोब जमाने आई थी। एक गीत समाप्त हुआ तो उसने ढोलक ले ली, सब मन्त्रमुग्ध-सी हो कर उसका गाना सुनने लगीं। वह अत्यन्त सुन्दर है, यह बात मुझे ज्ञात थी, पर उसके गले में इतना रस है, यह मैं न जानती थी। गई रात तक गाना होता रहा। सब धीरे धीरे चली गई, पर मैं वहीं बैठी अपने भावी जीवन के सुन्दर प्रासाद बनाती रही! मैंने उसकी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। कुछ क्षण बाद मालूम हुआ कि वह नहीं गई। मेरे समीप होकर बैठ गई और बोली—लक्ष्मी!

"हां"

लेकिन वह कुछ न कह सकी, शब्द उसके ओठों तक आ कर रुक गए। मैंने अन्यमनस्कता से पूछा—'कहो क्या कहती हो?'

वह फिर भी न बोल सकी।

तनिक नर्म होकर मैंने पूछा—'कहो बहन, क्या कहने आई हो?'

किसी प्रकार की भूमिका बांधे बिना उसने कह दिया—लक्ष्मी, मैं हीरा

लाल की मँगेतर हूं।

"कौन हीरा लाल?" मैंने धड़कते हुए दिल के साथ पूछा।

"डॉक्टर हीरा लाल!" उसने उत्तर दिया।

मेरा हृदय धक् से रह गया। क्षणभर के लिए मैंने अपनी और उसकी तुलना की, खयाल आया, हीरा लाल ने मेरा चुनाव करने में ग़लती की, पर दूसरे क्षण यह खयाल मिट गया और गर्व से मेरा सिर ऊंचा हो गया। ललता आज तक मुझे पराजित करती आई थी, मेरी बदनामी करने में उसने कोई कोर-कसर न उठा रखी थी, पर भाग्य ने सबका बदला चुका दिया। मुहब्बत की लड़ाई में मेरी ही जीत हुई।

अपने मन के भावों को मन ही में छिपा कर मैंने कहा—"फिर?"

"मैं उनसे बहुत मुहब्बत करती हूं।"

"अपने पति से सब को मुहब्बत होनी ही चाहिए।"

वह रो पड़ी, "लक्ष्मी, जले पर नमक न छिड़को, मैं गर्व करती थी, मेरा गर्व मेरे आगे आया। देखो अब दया करो, नहीं तो मैं जीवित न रह सकूंगी।"

"मैं क्या कर सकती हूं?" मैंने ज़रा-सा चिढ़ कर कहा।

"क्या कर सकती हो, तुम ने उनको मुझ से छीना है, तुम ही वापस दिला सकती हो।"

मैं चुप बैठी उसके चेहरे की ओर देखती रही। वह फिर बोली—"लक्ष्मी उस दिन वे मुझे ही देखने आए थे, तुम किशोरी लाल ही से पूछ लो, छोटे सुन्दर ने उनकी बातें सुनी थीं, पर इससे पहले कि वे मुझे देख सकें तुम ने उन्हें अपने जाल में जकड़ लिया और अब वे तुम्हारे संकेत पर चलते हैं।"

मैंने कहा—"यह चाँद-सी सूरत दिखा कर तुम उन्हें अपने वश में क्यों नहीं कर लेतीं? मुझ पर झूठे अभियोग क्यों लगाती हो?"

"मुझ से न छिपाओ लक्ष्मी!" वह बोली—"मुझे ज़रा-ज़रा-सी बात का पता है। मैं चाहती तो तुम्हारी बदनामी कर सकती, पर मैं तुम से प्रार्थना करती हूं कि यदि अपना मकान सुन्दर नहीं, तो दूसरे के बसे हुए घर को न

उजाड़ो । तुम्हारा मकान न बनेगा, उसका अवश्य नष्ट हो जाएगा। मुझे क्रोध हो आया। मैंने कहा—यदि तुम्हें इस बात का निश्चय होता कि इससे मेरी निन्दा होगी, मुझे दुःख पहुँचेगा तो तुम कभी न चूकतीं, बल्कि असल बात से भी बढ़ा-चढ़ा कर बयान करतीं । मैं तुम्हारी बदनामी की चिन्ता नहीं करती, पर तुम से भी यही कहती हूं कि यदि अपना मकान नहीं बसता तो दूसरे के बसे हुए मकान को न उजाड़ो ।"

ललता चली गई । कल पहली बार उसने पराजय स्वीकार की। इस तरह बन ठन कर आई थी जैसे मुझ पर जादू कर देगी, मुझे उंगलियों पर नचाएगी । मैंने उसे बिलकुल नहीं रोका । उसके जाने के बाद मैं खामोशी से अपने कमरे में चली गई । बहुत देर तक नहीं सोई । क्षणभर के लिए मेरा दिल असमंजस में पड़ गया । ललता को हीरा लाल से बेहद मुहब्बत है; वह उनकी उचित मँगेतर भी है; फिर हीरा लाल पर उसका मुझ से ज़्यादा हक़ है; वह सुन्दर है, सुशिक्षत है और गले में उसके रस है; हीरा लाल के लिए वह जीवित है, उनके बिना मर जाएगी; किन्तु दूसरे क्षण यह सब विचार हवा हो गए । मुहब्बत में मरनेवालों की सूरत ऐसी ही होती होगी ? आई तो प्रार्थना करने, पर रानी बनकर । किसी के दरवाज़े पर भिखारी बन कर जाया जाता है, राजा बन कर नहीं । फिर संसार के संघर्ष में सब कोई अपने प्रतिद्वन्द्वी पर विजय पाने का प्रयास करता है । यदि ललता मेरी हालत में होती, तो वह भी क्या ऐसा न करती । फिर मैं उसका अधिकार छीनने वाली कैसे हो गई ? मैं हीरा लाल को बुलाने नहीं गई, वह स्वयं मेरे घर आ गए, और घर आई दौलत को कौन ठुकराता है ? यह सब बातें सच हैं सुमित्रा, पर इस समय मेरा दिल डावां डोल हो रहा है । एक चिन्ता है, अब तक तो हीरा लाल ने उसे नहीं देखा । यदि देख लिया तो कहीं की न रहूंगी । बनी बात बिगड़ जाएगी । कभी ख़याल आता है कि नाव को लहरों के सहारे छोड़ दूं, चाहे किनारे लग जाए, चाहे डूब जाए । फिर ख़याल आता है, नहीं इस तरह दूसरे की नाव भी डूब जाएगी । मैं भी तबाह हूंगी, वह भी । लिखो, दोनों डूबें या एक ? वापसी डाक से सलाह दो ।

तुम्हारी,

लक्ष्मी ।

[६]

बस्ती ग़ज़ां,
जालन्धर ।

सुमित्रा,

तुम्हारा पत्र मिला । परामर्श जो तुम ने दिया, व्यर्थ है । मुझे नौका को बहाव में छोड़ने का साहस नहीं हुआ । अपनी ख़ुशी पर मैं दूसरे की प्रसन्नता वार नहीं सकी । मेरी शादी का दिन आया सुमित्रा, और फिर हमारे छोटे-से घर में छाई रहनेवाली निस्तब्धता जैसे कुछ दिनों के लिए भंग हो गई । चिर निद्रित चहल-पहल जैसे जाग उठी । मुझे भी उस अँधेरी कोठरी से निकालकर ऊपर के कमरे में पहुँचाया गया । मैं गहनों कपड़ों में लदी हुई वहां बैठी रहती । सब सामान पूरे हो चुके थे । रात के १२ बजे का लग्न था, दस बजे रात को बारात आनी थी । और हम ने इसी हड़बौंग में भाग जाने की सलाह कर रखी थी । रात के ९ बजे स्त्रियां और सहेलियां बारात के देखने के लिए नीचे आंगन में चली गईं । मैंने जल्दी-जल्दी आभूषण उतार कर डिब्बे में बन्द किए और एक सादी सी धोती पहनली, ताकि मुझे कोई पहचान न सके । तीन दिन से मेरे दिल में जो धुकड़-पुकड़ हो रही थी, आज मैंने उसे ख़त्म करने का फ़ैसला कर लिया था । ललता मरे या जिये, मैं अपने सुख को उस पर क्यों बलिदान करूं ? हीरा लाल मुझ से प्रेम करते हैं, मुझे छोड़ न सकेंगे । मैंने जेब में अफ़ीम की डिबिया रख ली । यदि ललता ने शोर मचाया, या मैं अपने उद्देश्य में सफल न हो सकी तो यह मुझे रोज-रोज के ग़म से मुक्ति दिला देगी । दस बजे, जब बस्ती में बारात के आगमन का शोर था—मेरी और कौशल्या की बारातें एक वक्त आ रही थीं । हीरा लाल ने पिछवाड़े की ओर से सीढ़ी लगाई । मैं अपने कमरे से निकली, सीढ़ी पर मैंने पांव रखा । मैं निडर थी, उसी प्रकार जैसे काले पानी का बन्दी स्वतंत्रता की बाजी लगाते समय बेख़ौफ़ हो जाता है । मैं प्रसन्न थी, एक तीर से दो शिकार कर रही थी, एक तो स्वतंत्र हो रही थी, दूसरे ललता से अपने अपमान का बदला ले रही थी । मैंने उस

मकान पर अन्तिम दृष्टि डाली, जहां खेल कूद कर बड़ी हुई थी, उस कोठरी को भी देखा जो मेरे काराबास का काम देती थी, आंगन, बरामदा और डेवढ़ी, और सब ओर नजर दौड़ाई, उस कमरे को भी देखा, जहां से मैं अभी निकली थी। निमिष मात्र के लिए मेरा दिल धक्-धक् करने लगा। बाहर कोने की मद्धिम रोशनी में दो आँखें मेरी ओर टकटकी बाँधे हुए देख रही थीं। मैंने दूसरा पाँव सीढ़ी पर रखा। वे आँखें—समस्त संदेह, सारे विचार, सब फिर जाग पड़े। मेरी निगाहें फिर इन निगाहों से चार हुईं। उन आँखों में करुणा थी, वही करुणा जो अपने सामने अपने भव्य प्रासाद को जलता देखने वाले मालिक-मकान की आँखों में होती है। यह ललता थी! मैं वापस चली गई। हाय, मैं इस ललता से बदला लेने चली थी। उस दिन की ललता और आज की ललता में कितना अन्तर था! एक गर्व की पुतली थी, दूसरी विनय की तस्वीर; एक आकाश की बुलंदियों पर उड़ती थी, दूसरी धूल में गिर पड़ी थी। एक ललता थी, दूसरी उसकी छाया। इन तीन दिनों में जाने उसमें इतना अन्तर कैसे आ गया था? जाने कितना ग़म उसने खाया? शायद उसने तीन दिन से उपवास रखा था, चेहरे की दीप्ति ही जाती रही थी, वर्षों की बीमार मालूम होती थी, बाल बिखरे हुए थे, मुख पीला पड़ गया था, आँखें करुण थीं। तो मैं इस ललतासे बदला लूं? मेरे दिल से सुमित्रा, बदले, खुशी, जीवन, मुहब्बत, उल्लास के सब विचार उड़ गए और इन सब की जगह केवल ललता के जीवन की रक्षा का भाव जोर पकड़ गया। अपनी जिन्दगी बचाने की अपेक्षा दूसरे का जीवन बचाना भी कितना अच्छा है! हीरा लाल मुझे लेजाने के लिए छत पर आगए, पर ललता को देखते ही उलटे पांव उतर गए। ललता की आँखें सजल हो गईं, उसने रोते हुए कहा—लक्ष्मी, अगर मेरे भाग्य में सुख नहीं तो तुम मेरे लिए दुःख में क्यों पड़ती हो?

इन शब्दों में कितनी विनय थी, कितना निवेदन था। मेरी आँखों में अब भी उसकी यह करुण आकृति घूम रही है, उसके वे विनीत शब्द मेरे कानों में गूंज रहे हैं। यदि यही शब्द वह पहले कह देती तो मैं उस

पर हीरा लाल तो क्या, स्वयं अपने आपको निछावर कर देती ।

मैंने जल्दी-जल्दी विवाह के कपड़े डाले, आभूषण पहने, मोतियों के तार में बँधे हुए कलीरे फिर कलाइयों में लगाए, कुछ देर बाद दूल्हा साहब आ गए; यद्यपि चालीस वर्ष के हैं, तो भी गठे हुए शरीर के रोब वाले आदमी हैं, शायद किसी ने उनकी आयु को देख कर नाक भौं सिकोड़ी, शायद किसी ने मेरे पिता को कोसा, शायद किसी ने कहा—लड़की को नरक में ढकेल दिया है, लेकिन मैंने इन बातों की कोई परवाह न की, खुशी-खुशी चौकी पर जा बैठी, सुबह चार बजे शादी की रस्म पूरी हुई, मैं ऊपर आ गई। ललता अभी तक बैठी थी, मुझ से लिपट गई और बहुत देर तक रोती रही। मैं हँस दी, यह गर्व की हँसी थी । शत्रु को अपने पंजे में गिरफ़तार करके छोड़ देना, कितने गर्व की बात है सुमित्रा, सच कहती हूं, मेरे सिर से एक बोझ-सा उतर गया, मैं हत्यारिन होने से बच गई । यदि स्वर्ग और नरक के चुनाव में मैंने नरक का चुना तो कोई बात नहीं, मैं इसे भी स्वर्ग बना लूंगी। प्रार्थना करो मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो ।

तुम्हारी,
लक्ष्मी ।

कुलांच

लाहौर जाने के कुछ महीने बाद अनन्त को चेतन का एक पत्र मिला :—"तुम्हें एक दिलचस्प बात सुनाता हूं," चेतन ने लिखा था, "मेरे मकान के सामने एक ताँगेवाला रहता है। जिस मकान में वह रहता है वह यद्यपि दोमंज़िला है तो भी उसे मकान का नाम देते हुए संकोच होता है। ऊपर की मंज़िल में एक कोठरी है और एक छोटा (ऊपर से खुला) आँगन, और निचली मंज़िल में सिर्फ़ दो कोठरियाँ हैं। ऊपर की मंज़िल में ताँगेवाले का परिवार रहता है और निचली मंजिल में रहीम चंगड़। इस चंगड़ की बीबी फ़ाताँ सुबह से लेकर शाम तक ऐसी-ऐसी अश्लील गालियाँ बकती है कि सुनकर रूह काँप जाती है। कमबख़्त ने ग़ज़ब का दिमाग़ पाया है—एक गाली दूसरी से बेजोड़ ही होती है।

ताँगे वाले के एक माँ है, बहन है और छोटे-छोटे भाई हैं। उसकी यह बहन, मैं देख रहा हूँ, कुछ दिनों से मुझ में दिलचस्पी लेने लगी है। जब मैं अपने कमरे में बैठा लिखा करता हूं तो वह खिड़की में आजाती है। यह खिड़की एक खुला-सा बड़ा झरोखा है। इसमें न किवाड़ हैं न सीखचे। धूप तेज होने पर भी वह उसी में बैठी रहती है।

मोटी कुरूप और फूहड़–इसे प्रेम करने को भी कोई और नहीं मिला लेकिन अनन्त, दिल ही तो है......

और फिर दफ़्तर से जब प्रधान सम्पादक की घुड़कियाँ सुनकर आता हूं और उसी झरोखे में बैठी अपने मोटे मोटे ओठों पर मीठी मदिर मुस्कान लाकर, वह मेरा स्वागत करती है तो अनन्त! मन हरा-सा हो जाता है और

सम्पादक महोदय की तीखी बातों से दिल पर पड़े घाव कुछ भर-से जाते हैं।

इस पत्र के बाद इसी प्रकाशो के सम्बन्ध में चेतन ने कुछ ऐसी बातें लिखीं कि जब अनन्त एक बार अपने बहनोई के पास पिंडी गया तो वापस आता लाहौर उतर गया। ढूंढ़ता-ढूंढ़ता वह बङ्गाली गली में चेतन के दफ़्तर पहुँचा। इतवार होने के कारण दफ़्तर बन्द था। तब वह 'पीपल वेहड़ा' चंगड़ मुहल्ला का पता पूछता पूछता चल पड़ा।

सुबह का वक्त था, और चाहे म्यूनिसिपल कमेटी के भंगी और भिश्ती अपना काम पूरा कर गये थे, किन्तु गन्दगी की गाड़ियाँ भी अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं। वास्तव में घोड़ों के अस्तबलों, गन्दी गाड़ियों के अहातों और गूजरों, चंगड़ों, भंगी तथा चमारों के घरों का सामीप्य होने के कारण भिश्ती चाहे लाख छिड़काव कर जायँ, और भंगी चाहे लाख सफ़ाई कर जायँ, चंगड़ मुहल्ले की दशा में कभी कोई अन्तर नहीं आता। अनारकली के समीप ही इतना बेरौनक़, गन्दा और ग़रीब इलाक़ा हो सकता है, अनन्त ने इसकी कल्पना भी न की थी। इधर चंगड़ मुहल्ले में कुछ नई दूकानें बन गई हैं। पर तब तो सारे बाज़ार में दो तीन लॉंडरियों, एक मैले कुचैले बनिये और दो एक हलवाइयों की दूकानों के अतिरिक्त कुछ भी न था। मोहन लाल रोड की ओर से प्रवेश करके किसी न किसी तरह नाक पर रूमाल रखे अनन्त 'पीपल वेहड़ा' को जाने वाली गली के सिरे तक पहुँचा। पक्की ईंटों की दो सीढ़ियों के साथ बाजार से तनिक ऊँची पक्की इंटों ही की गली बनी थी। सामने एक ऊँचा पक्का मकान था जिसकी खिड़कियों पर गहरे सरदई रंग की पालिश भी थी। अनन्त ने सुख की सांस ली कि आख़िर वह साफ़ स्वच्छ जगह पहुँच गया है। किन्तु जब लाला भगवानदास का मकान पूछता हुआ वह चंद क़दम चल कर उस नये मकान के पास से दाईं ओर की गली में मुड़ा तो सहसा उसे नाक पर रूमाल रखना पड़ा। गोबर की एक तीखी बू उसकी नाक में घुस गई और इसके साथ ही किसी नारी का कर्कश स्वर उसके कान में पड़ा जिसके एक वाक्य में लगभग सबकी सब गालियाँ ही थीं। एक दो पक्के मकानों के अतिरिक्त इस गली में सब कच्चे मकान थे। इनमें चंगड़ रहते थे। इसी गली का नाम वास्तव में 'पीपल

वेहड़ा' था। लाला भगवानदास ने अपनी वैश्य-वृत्ति के कारण असल और सूद मिलाकर इन्हीं चंगड़ों में से कुछ की झोपड़ियाँ हथिया ली थीं और दो तीन पक्के मकान खड़े कर लिए थे।

गली के सिरे पर ही अपने कच्चे मकान की देहरी पर एक काला भुजंग चंगड़ नंगे बदन तहमत लगाए मजे से बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। इसी से अनन्त ने लाला भगवानदास का पता पूछा और जब उसने पास ही के पक्के तीन मंज़िले मकान की ओर इशारा कर दिया तो मकान के पास जाकर अनन्त ने चेतन का नाम लेकर आवाज़ दी।

किसी ज़माने में शायद यहाँ खुली जगह होगी और यह स्थान वेहड़ा अर्थात् आँगन कहलाता होगा। हो सकता है पीपल का कोई पेड़ भी यहाँ कहीं हो, किन्तु उस समय तो दोनों में से एक चीज़ भी वहाँ न थी। मकान के साथ छै सात फ़ुट ख़ाली जगह थी जिसे पक्की कंधों तक ऊँची दीवार गली से अलग कर रही थी। यह जगह पक्की बनी हुई थी। इसके बीचो-बीच एक बड़ी नाली थी जो सारे मकान का गंदा पानी लाकर गली की नाली में मिला देती थी। नाली की जो दशा थी उसे देख कर अनन्त ने मकान के निवासियों के रहन सहन का अनुमान लगा लिया।

रहा मकान, सो तीन मंज़िलों में से निचली मंज़िल में एक बड़ी तंग ड्योढ़ी थी जिसके परे तंग अंधेरे आँगन का कुछ आभास मिलता था। इस ड्योढ़ी के दोनों ओर सीढ़ियाँ चढ़ती थीं जिससे मालूम होता था कि मकान दो भागों में विभक्त है। वास्तव में वह तीन में विभक्त था और उन तीन भागों में (इस बात का अनन्त को बाद में पता लगा) नौ या दस किरायेदार रहते थे। निचली मंज़िल में ड्योढ़ी की ओर दो-दो दरवाज़े वाले दो कमरे थे। इन के ऊपर दो और कमरे थे जिनकी मैली खिड़कियाँ अपनी दुर्दशा पर मूक आर्तनाद कर रही थीं। तीसरी मंज़िल पर अनन्त को ईंटों के पर्दे ही दिखाई दिए। लाला भगवानदास का मकान उन मकानों में से एक था जो लाहौर में सिर्फ़ किराये पर रहने वालों के लिए बनाए जाते हैं।

अनन्त की आवाज़ सुनकर ड्योढ़ी के दाईं ओर के निचले कमरे से (जिसके दोनों किवाड़ों पर पीली नई चिकें लटक रही थीं) चेतन निकला।

कमर तक बदन नंगा था और कमर के नीचे तहमत लटक रहा था। अनन्त को देख कर खुशी की एक "ओह!" करके हाथ मिलाता हुआ वह उसे अपने कमरे के अन्दर ले गया।

अँधेरा सील भरा कमरा—दीवारों का पलस्तर ऐसा मालूम होता था कि गिरा ही चाहता है। खिड़की अथवा रोशनदान एक भी न था। बस एक दरवाज़ा उस अँधेरे-से आगन में खुलता था। इस दरवाज़े को चेतन प्रायः बन्द ही रखता था और बन्द सील भरे कमरों से जैसी बू-सी आने लगती है वैसी ही दम घोटनेवाली बू कमरे से आ रही थी। कमरे में अल्मारी भी कोई न थी। यों ही दीवार में दो जगह ताख बनाकर तख़्ते लगा दिए गए थे। छत काली स्याह थी जिससे मालूम होता था कि पहला किरायेदार यहाँ अवश्य ही रसोई भी बनाता रहा होगा। नीचे सीमेंट का फ़र्श था जिसमें पैबन्द लगे थे। लेकिन कमरा साफ़ था और चेतन के शरीर की गर्द बता रही थी कि उसने अभी अभी उसे साफ़ किया है। फ़र्नीचर के नाम एक कोने में स्याह मेज़ पड़ी थी। उसके पास बिना बाज़ुओं की एक काली गद्देदार कुर्सी थी। रोशनी के लिए दीवार में कील गाड़ कर एक बिजली का बल्ब लटकाया गया था।

"यह मेज़ कहाँ से लाये हो?" अनन्त ने कहा, "बना तो खूब है और है भी आबनूस की लकड़ी का, लेकिन लगता तो सेकण्ड हैन्ड है।"

"शायद थर्ड हैन्ड!" हँसते हुए चेतन ने कहा "मैं तो एक कबाड़ी की दूकान से दोनों चीज़ें ख़रीद लाया हूँ। फिर तनिक गंभीर होकर वह बोला, "हम सब एक दूसरे पर निर्भर हैं—हमारा उतरन ग़रीब बड़े हर्ष से स्वीकार करते हैं और अमीरों का उतरन हम" और वह एक खोखली-सी हँसी हँसा।

अनन्त ने तनिक और समीप होकर देखा तो गाढ़े काले रोग़न और पोटीन की सहायता से कई जोड़ ढके हुए दिखाई दिए। न जानें यह मेज़ कितनी बार मरम्मत होने के बाद इस महत्वाकांक्षी लेखक के यहाँ आया था।

"अन्दर ही आ जाओ।"

अनन्त ने ध्यान ही न दिया था कि अन्दर भी कोई कमरा है।

अनगढ़ से किवाड़ों को खोल कर चेतन अन्दर गया। उसने बिजली का बटन दबाया। अनन्त ने देखा कि एक अँधेरी कोठरी है जिसकी दीवारों में बाहर के कमरे जैसे ही ताक हैं। एक सस्ती सी चारपाई बिछी है। सील की बू यहाँ पहले कमरे से भी तेज़ है। रोशनदान तो दूर, एक झरोखा तक भी कहीं नहीं है और दीवारों का पलस्तर बहुत जगहों से गिर चुका है—हाँ ठंडक इस कोठरी में बाहर से ज़्यादा है। अनन्त चुपचाप चारपाई पर लेट गया।

लेकिन वह अधिक देर तक वहाँ लेटा न रह सका। कमरा दोपहर को शायद ठंडा हो जाता होगा, पर सुबह उसमें उमस की मात्रा अधिक थी। वह उठकर बाहर आया। दीवार के साथ लगी एक ईज़ीचेयर चेतन ने बिछा दी। तभी सामने के मकान की खिड़की में एक लड़की आ खड़ी हुई।

चेतन ने धीरे से कहा " प्रकाशो ! "

लेकिन शायद चेतन के पास किसी अन्य व्यक्ति को बैठे देख कर वह चली गई।

स्नानादि से निवृत्त होकर जब गणपत रोड के एक होटलनुमा तंदूर पर चेतन अपने इस बचपन के मित्र को खाना खिला लाया तो दोनों अन्दर की चारपाई बाहर निकाल कर उस पर लेट गए। वहीं लेटे-लेटे चेतन ने अनन्त को अपने इस निवासस्थान का परिचय दिया।

पांच–छः भागों में बने हुए उस तिमंजिले मकान में दस किरायेदार रहते थे। आँगन में एक हैन्ड पम्प था। नल या कोई स्नानघर उस मकान में न था। इसलिए वह हैण्ड पम्प ही स्नानघर का काम भी देता था, यद्यपि चेतन वहाँ से बाल्टी भर कर अपने इस रसोईघर में ही नहाता था। इस हैण्ड पम्प के दायीं ओर दो कोठरियों में रंगसाज लड़के रहते थे जो दिन भर काम करते और सोने के लिए वहाँ आ जाते थे। नल के दूसरी तरफ़ चेतन के कमरे के सामने एक हलवाई रहता था जिसकी पत्नी ने अपने इस कमरे को छोटा मोटा मन्दिर बना रखा था। ग़रीब चंगड़ों के गाढ़े पसीने की कमाई सूद दर सूद में उनके घर आ रही थी, फिर चंगड़ों की एक दो झोपड़ियों के स्थान पर उनका जो मकान बन गया था उसमें सन्दिग्ध क़िस्म के लोग रहते थे। एक स्त्री थी जिसके पास कुछ जवान लड़कियां थीं और

नये–नये लोग रात के समय वहाँ आया करते थे । इसके अतिरिक्त उस हलवाई के घर इस बढ़ती हुई जायदाद को सम्हालने वाला कोई पैदा न हुआ था । इन्हीं सब कारणों से सुबह शाम वहां भगवान की आराधना में घण्टे घड़ियाल बजा करते थे ।

दूसरी मंजिल में चेतन के ऊपर वाले दो कमरे इन्श्योरेन्स कम्पनी में काम करने वाले एक कर्क और उसके साथी ने ले रखे थे । साथी की मां रहती थी । रसोईघर कोई था नहीं, इसलिए वे ऊपर के कमरे ही में रोटी पकाते थे । जिस दिन कभी बादल होते और हवा तेज चलती तो उनके रसोईनुमा कमरे का धुआं चेतन के इस स्नानघर-रूपी ड्राइंग रूम में आ जाया करता । ड्योढ़ी के ऊपर अध–छते आंगन और पिछली दो कोठरियों में एक कम्पोजीटर और उसकी विधवा भावज तथा उसके दो बच्चे (दस-बारह वर्ष की एक लड़की और सात-आठ साल का एक काना लड़का) किसी न किसी तरह जीवन के दिन व्यतीत कर रहे थे ।

हलवाई के ऊपर प्रायमरी स्कूल का एक अध्यापक रहता था ।

तीसरी मंज़िल पर तीनों हिस्सों मं एक-एक बरसाती थी जिनमें क्रमशः एक खोम्चेवाला, एक चिट्ठीरसा और एक पनवाड़ी सपरिवार रहते थे । जलती धूप हो अथवा चुभती सरदी, खाना उन्हें बरसाती के आगे खुली छत पर पर्दा-सा लगाकर पकाना पड़ता था ।

इन सब नौ-दस किरायेदारों के लिए तीन शौचालय थे और बाक़ी ‘ड्राइंगरूम’, ‘स्नानगृह’, ‘शयनगृह’, ‘रसोईघर’ आदि का काम वे सब अपने उन्हीं दो एक कमरों से लेते थे ।

गर्मियों में सोने का प्रबन्ध यों होता–निचली मंजिल वाले नीचे मकान के बाहर नाली पर चारपाइयां पिछा कर सोते । बीच की मंज़िल में रहने वाले बरसातियों के ऊपर सोते । बरसातियोंवाले अपनी बरसातियों के सामने ।

इस मकान और उसके किरायेदारों का परिचन देकर चेतन ने कहा, “ तुम्हें यह सुनकर हैरानी होगी कि ये दो कमरे भी मुझे बड़ी दिक़्क़त से मिले, लाहौर के गली–मुहल्लों में किसी अविवाहित युवक के लिए किसी कमरे

का लेलेना आसान बात नहीं । साथ में कोई स्त्री होनी चाहिए, चाहे वह मां, बहन, चाची, ताई, भावज, बुआ, यहां तक कि कहीं से भगाई हुई ही क्यों न हो । ”

यहां चेतन ने क़हाक़हा लगाया और फिर बोला—“ लेकिन मैंने भी इन लोगों को खूब बनाया । तुम्हें हुनर साहब की तो याद होगी ? अरे वही जो जालन्धर में दुनिया भर के शायरों की चीजें अपने नाम से सुनाकर मुझपर रोब जमा आए थे, जिन्हें मन ही मन मैं अपना गुरू भी मान चुका था और इसी श्रद्धा के फल-स्वरूप मैंने पाँच रुपये भी जिनकी भेंट किए थे । सब्जी मंडी के उस होटल को छोड़ने के बाद मैं उन्हीं के यहाँ रहा । दूसरा कोई परिचित था नहीं, क्या करता ? लेकिन अभी महीना खत्म भी न हुआ था कि हुनर साहब ने, यह बताकर कि सोलह रुपया मकान का किराया उन्हें देना पड़ता है, आठ रुपये मुझसे माँग लिए । ”

अनन्त हँसा ।

“ उन्होंने यह प्रस्ताव भी किया, ” चेतन ने बात को जारी रखते हुए कहा, “ कि मैं रोटी भी वहीं से खाऊँ और वे इस सब के बीस रुपये मुझसे ले लिया करेंगे । कहने लगे---‘ अपना आदमी साथ हो तो आरामी-बीमारी में सौ मदद मिल जाती है । ’ और तनिक हँसते हुए चेतन बोला, “ बस उसी दिन शाम को मैं मकान की तलाश में निकल पड़ा । यह भी इच्छा थी कि दफ़्तर के पास कहीं मिल जाए तो रात को उनींदी आँखों को मील डेढ़ मील चलकर मकान पहुँचने की मुसीबत से छुट्टी मिले, लेकिन पाँच-छः जगह पूछने पर ही पता चल गया कि कुँवारे के लिए किसी सभ्य इलाक़े में कोई कमरा किराये पर ले लेना कुछ आसान बात नहीं । ”

“ इस चँगड़ मुहल्ले में भी, ” चेतन ने हँसकर कहा, “ ड्योढ़ी के ऊपर दरम्याने में रहने वाली विधवा ने पूछा कि मैं अकेला ही आऊँगा या सपत्नीक ? तब मैंने कह दिया कि पत्नी तो मेरे है, पर अभी उसे परीक्षा देनी है, इसलिए वह साथ न आएगी । ”

अनन्त ने हँसकर कहा, “ लेकिन परीक्षाएँ तो हो चुकीं । ”

चेतन बोला, “ पूछती तो, लेकिन मैंने कह दिया कि मेरी पत्नी प्रान्त

भर में सर्व-प्रथम रही है, इसलिए वहीं स्कूल में उसे अध्यापिका की जगह मिल गई है। अब मैं कोशिश करूंगा कि उसकी बदली यहाँ लाहौर हो जाय।"

इस पर दोनों खूब हँसे। तभी अनन्त ने देखा कि वह लड़की-वह प्रकाशो, चुपचाप उस झरोखे में आकर खड़ी हो गई है। वास्तव में एक किवाड़ की चिक कुछ नीची लगी थी—अचानक ही लग गई थी, या शायद चेतन ने उसे जान बूझ कर ही इस तरह लगाया था—उसके ऊपर से सामने के भरोखे में बैठा हुआ व्यक्ति भलीभाँति दिखाई दे जाता था।

वहीं लेटे लेटे अनन्त ने चेतन का कन्धा हिलाकर उसका ध्यान लड़की की ओर आकर्षित किया।

धीरे से चेतन ने कहा, "तुम चुप यहीं लेटे रहो, वह शायद तुम्हें नहीं देख रही।"

इसके बाद जो कुछ हुआ उसके फल-स्वरूप अनन्त ने फ़तवा दे दिया कि लड़की को चेतन से अपार प्रेम है और जब चेतन ने उसे बताया कि इधर कुछ दिनों से प्रकाशो दूसरे नलों को छोड़कर उसके पम्प पर ही आने लगी है, और घरवालों को उसने विश्वास दिला दिया है कि म्यूनिसिपैलिटी के नलोंकी अपेक्षा पम्प का का पानी कहीं अधिक ठंडा होता है, तो अनन्त ने यह नेक सलाह दी कि आज जब वह पम्प पर पानी लेने आए तो उसे पकड़ कर तत्काल अन्दर ले आना चाहिए। अपनी और अपने एक दो मित्रों की मिसालें देकर अनन्त ने कहा, "वह तो तुम्हारे आलिंगन में बद्ध होने के लिए छटपटा रही है। तुम साहस से काम न लोगे तो यह मामला बस इससे आगे न बढ़ेगा।"

लेकिन चेतन का दिल बेतरह धड़क रहा था। तब अनन्त ने पूरे डेढ़ घंटे तक प्रेम के सम्बन्ध में अपने साहस और दिलेरी की जो कहानियां सुनाईं उनका परिणाम यह हुआ कि धड़कते हुए दिल के साथ चेतन दुस्साहस का यह काम करने को तैयार हो गया।

साधारणतयः प्रकाशो सन्ध्या से बहुत पहले ही आती, जब आमतौर पर ऊपर रहनेवाली विधवा अपने बच्चों के साथ सो रही होती

और आँगन में सन्नाटा होता। उसके आने से पहले अनन्त ने चेतन को इस तरह तैयार कर दिया कि वह आँगन में खुलने वाले दरवाज़े में खड़ा रहे, अनन्त दरवाज़े की ओट में बैठा रहेगा और अगर कोई ऐसी-वैसी बात हो गई तो वह उसे सम्हाल लेगा।

जब प्रकाशो समय पर पानी लेने आई और बाल्टी भर चुकी तो अनन्त ने कुहनी के ठेके से चेतन को जाने के लिए कहा। किन्तु अनन्त ने यद्यपि तीन चार बार उसके कुहनी गड़ाई तो भी वह टस से मस न हुआ और प्रकाशो बाल्टी उठाकर अपने मोटे-मोटे ओठों से मुस्कराती और अपने भारी कूल्हें मटकाती हुई चली गई।

तब अनन्त ने द्वाबा की विशुद्ध भाषा में चेतन पर 'मधुर वचनों' की झड़ी लगा दी और फ़तवा दिया कि वह एकदम नपुंसक है।

शायद यह शब्द सुनना चेतन के पुरुषत्व को गवारा न था, इसलिए जब प्रकाशो दूसरी बार बाल्टी लेने आई और बाल्टी पम्प के नीचे रखते हुए और अपने मोटे ओठों से मुस्कराते हुए उसने दो एक बार हैण्डल घुमाया तो चेतन ने एक कुँलाच भरी।

"हाय मैं मर गई," कहती हुई प्रकाशो वहीं धम से बैठ गई। चेतन के चेहरे पर स्याही पुत गई और उसकी भुजाएँ खुली की खुली रह गई।

कमरे में वापस आकर बीस गालियाँ तो चेतन ने अनन्त को सुनाई और कहा कि अगर किसी ने देख सुन लिया हो, या प्रकाशो ने जाकर घर कह दिया तो क्या होगा?

उसका चेहरा कपास के फूल की भाँति सफ़ेद हो गया था। वह सोच रहा था कि यदि प्रकाशो ने घर जाकर कह दिया तो सम्हाल कर रखी हुई इज़्ज़त पर पानी फिर जायगा, अपमानित होकर मुहल्ले से निकलना पड़ेगा और दफ़्तर के इतने समीप मकान भी फिर मुश्किल ही से मिल सकेगा।

पर अनन्त ने कहीं से केले का छिलका लाकर आँगन में रख दिया और उसे इस तरह पाँव से मसल दिया जैसे इस पर कोई फ़िसल गया हो।

फिर उसने चेतन को सान्त्वना दी कि अव्वल तो प्रकाशो घर जाकर कहेगी नहीं और यदि उसने यह हिमाकत की भी और तुमसे किसी ने पूछा तो कह देना कि मैं बाहर जाने लगा था, केले के छिलके पर फ़िसल गया। बाहें मैंने जरूर फैलाई थीं और पकड़ना भी मैंने चाहा था, लेकिन वह तो गिरते हुए की बेबसी थी।

चेतन को अनन्त की इस बात से कुछ अधिक सान्त्वना न मिली, किन्तु प्रकाशो ने जैसा कि अनन्त का खयाल था, घर जाकर नहीं कहा!

पुष्प का परिणाम

वह सिनेमा पर मुग्ध थी।

हर दूसरे-तीसरे सिनेमा देखने जाना उसके कार्यक्रम का एक भाग बन चुका था। उसे देशी फ़िल्मों से लगाव था, उनकी त्रुटियों के बावजूद वह उन्हें पसन्द करती थी।

कालेज से डिग्री लेकर एक अच्छी ऐक्ट्रेस बनने की आकांक्षा उस के मन में हिलोरें लिया करती थी।

वह सुशिक्षित थी, सुन्दर थी और सुसभ्य थी। अंगूर की बेल की भाँति तरल, कमल के फूल की तरह विकसित।

[२]

आज उसे अपने सामने बैठा हुआ देख कर वह अपने आपको भूल गई। वह यूनीवर्सिटी का ग्रेजुएट था और एक प्रसिद्ध फ़िल्म कम्पनी का प्रधान अभिनेता। उसके मुख पर, मुस्कराहट खेल रही थी। वह उसके पार्ट को बहुत दिलचस्पी से देखा करती थी।

"ऐक्टर उतने रूपवान नहीं होते, जितने वे रुपहले परदे पर दिखाई देते हैं", यह बात उसे असत्य प्रतीत हुई। वह कितना सुन्दर था, कितना सुडौल!

फ़िल्म में भी वही पार्ट कर रहा था। वह कभी परदे की ओर देखती और कभी उसके मुख की ओर। वह रजत परदे पर अपना अभिनय देखता, मित्रों से बातें करता और उनके किसी मजाक

पर अनायास हँस देता।

उसकी दृष्टि परदे से हट कर उसके चेहेरे पर जम चुकी थी। फ़िल्म समाप्त हो गई। उसके हृदय को एक धक्का-सा लगा।

अनिच्छापूर्वक वह घर चली आई।

[३]

अपने नियम के विरुद्ध दूसरे दिन फिर वह वही फ़िल्म देखने गई, पर वह वहाँ न था। घर आकर उसने उसे पत्र लिखा और उस में अपना हृदय खोल कर रख दिया—"मैं तुम्हारी फ़िल्मों को पसन्द करती हूँ......मैं उन्हें बार बार देखती हूँ......मैं तुम्हें हृदय से प्यार करती हूँ......"

और चन्द ऐसे ही प्रेम से परिपूर्ण, भावुक वाक्य।

उसने पत्र को बन्द किया और स्वयं जाकर बड़ी सावधानी से लेटर-बॉक्स में डाल आई।

सारा दिन उसके हृदय में उथल पुथल मची रही।

[४]

उसकी अभिलाषा पूर्ण हो चुकी थी। वे दोनों वाटिका की पगडण्डियों पर टहल रहे थे। उसने एक फूल तोड़ा और एक अच्छे ऐक्टर की भाँति उसकी ओर ले गया।

उसने उसकी सुगन्धि से अपनी प्यास बुझा कर उसे मसल डाला और धरती पर फेंक दिया।

सुकोमल पुष्प उसके पांव तले आकर रौंदा गया।

उसने इस बात पर कोई ध्यान न दिया और उसकी भुजा में भुजा डाल कर द्वार की ओर चल दी।

[५]

वह एक सफल अभिनेत्री थी ।

लोग उसका नाम सुनकर बेचैन हो जाते थे, उसकी फ़िल्में देखने को टूट पड़ते थे । उसके चित्रों से अपने ड्राइंगरूम की शोभा बढ़ाते थे ।

उसकी मेज़ पर प्रेम–पत्रों का ढेर लगा रहता था ।

देश भर के पत्र-पत्रिकाएँ उसकी प्रशंसा करते थे ।

उसकी अभिलाषा का यह अंग भी पूरा हो चुका था, किन्तु बड़ा मूल्य चुकाने के बाद । उसके वक्ष में वह हृदय न रहा था, अरमानों की दुनिया उजड़ चुकी थी; उल्लास स्रोत सूख गया था । अपनी ख़ुशी लुटा कर वह दूसरों की प्रसन्नता का सामान जुटाया करती थी ।

[६]

मेक–अप रूम में बैठी वह अपने विचारों में तल्लीन थी । सामने क़द-आदम शीशे की दोनों ओर गुलदस्ते सजे हुए थे । सहसा बेख़याली में उस ने एक फूल तोड़ा–अचानक उसे वाटिका की सैर की घटना याद हो आई और फिर बाद की कई दुखद घटनाएँ, चलचित्र की भाँति उसकी आँखों के सामने से घूम गईं ।

क्या उसका भी पुष्प का-सा परिणाम न हुआ था !

" मिस, आप तैयार हो गईं ? "–डायरेक्टर की आवाज़ ने उसे चौंका दिया ।

उसके विचारों का क्रम टूट गया । एक दीर्घ निःश्वास उसके अन्तर की गहराइयों से निकल गया और वह अपने बालों को सुलझाने और अपने भाग्य को और भी अधिक उलझाने में निमग्न हो गई ।

मरीचिका

पुरानी अनारकली,
लाहौर।

मेरी शकुन्तला,

अभी-अभी अपने इस कमरे—इस नीरस और निर्मम कमरे-में दाखिल हुआ हूँ। बुध और बुध आठ दिन हो गये हैं; किन्तु कौन कह सकता है कि यह आठ दिन थे ? यह तो आठ क्षण भी नहीं थे, मानों प्रेम की गाड़ी के 'फ़्लैग स्टेशन' थे, जो आँख झपकते ही निकल गये। प्रेम की मस्त और मनभावनी रातों के पश्चात् यह रात कितनी उदास, और बैरौनक़ प्रतीत होती है। कमरा उसी प्रकार सजा हुआ है; परन्तु इसमें अब कोई आकर्षण नहीं। पहले इसमें आते ही लेटने, बैठने, पढ़ने को जी चाहता था, अब यहाँ से निकल जाने को, भाग जाने को और एकान्त में अपनी कल्पनाओं की अलग दुनिया बसाने को मन होता है।

सोचता हूँ—काश, मैं इस दहलीज के अन्दर पाँव न रखता, काश, मेरे बाज़ुओं में पर लग जाते और मैं एक स्वतंत्र पंछी की नाईं उड़कर तुम्हारे पास पहुँच जाता। यही दीवारें, यही फ़रनीचर, जो पहले नाचता हुआ प्रतीत होता था, अब खाने को दौड़ता है। चीजें वही हैं; किन्तु अब उनमें मुझे घन्टों मंत्रमुग्ध बिठाये रखने की शक्ति नहीं। पंखा उसी तरह घर-घर कर रहा है; किन्तु उसकी ध्वनि से अब पलक भारी नहीं होते।

कमरे की हर वस्तु पर मिट्टी की एक हलकी-सी तह जम गई है। फ़र्श पर पाँवों के चिह्न अंकित हो रहे हैं। बाहर भयानक सन्ध्या अपने

आँचल में अँधेरे को छिपाये मुझे निगल जाने को दौड़ी आ रही है और मैं इस कमरे में इस तरह बैठा हूँ, जैसे स्वप्न के संसार में किसी मृतक की छाया। अतीत में कल रात की उल्लास–जनक स्मृति है, भविष्य में विरह की गहरी छाप।

अश्रुपूर्ण आँखें लिए तुमसे जुदा होकर मैं मोटरों के अड्डे पर पहुँचा। सूर्य आग उगल रहा था। मेरे दिल में पहले ही आग–सी लग रही थी और यदि कोई वस्तु इस ज्वाला से इस शरीर की रक्षा कर रही थी, तो वह थी तुम्हारी चन्दन–सी शीतल और मादक स्मृति।

मोटरों के अड्डे पर एक मित्र मिल गये, उन्होंने बलपूर्वक सोडावाटर का गिलास मुँह से लगा दिया। मेरा गला तो पहलेही से सूखा हुआ था, एकही साँस में गट–गट पी गया, इससे बाहरी प्यास तो बुझ गई; किन्तु दिल की प्यास—दिल की तृष्णा–और तेज हो उठी; शकुन्त, और तेज हो उठी!

मार्ग में बीसियों सुन्दर और रोचक दृश्य आँखों के सामने से गुजरे, किन्तु मन को कोई भी अच्छा न लगा। मोटर लाहौर को जा रही थी और मन जालन्धर के उस कमरे की परिक्रमा कर रहा था, जहाँ हमने मुहब्बत के थोड़े–से क्षण व्यतीत किये थे। मस्तिष्क तुम्हारा चित्र—तुम्हारा सुन्दर चित्र–बनाने में मग्न था, फिर प्रकृति के दृश्य अच्छे लगते तो कैसे? मोटर की सीटों के पास पड़े हुए कनस्तर से पेट्रोल के छींटे उड़ कर पतलून पर गिरते रहे और मार्ग की मिट्टी से वहाँ धब्बे बन गये; किन्तु मुझे इस बात का ध्यान तक न आया। सन्न बैठा रहा। कल रात तुम्हारे पास था, मुहब्बत के लालित्य–पूर्ण उद्यान की सैर कर रहा था। आज तुमसे कोसों दूर हूँ, मानो मरुभूमि में खो गया हूँ, जहाँ मुहब्बत की बू तक नहीं, जहाँ जमीन आग उगलती है। कितना अन्तर है; शकुन्त, कितना हृदय विदारक अन्तर! अब और नहीं।

तुम्हारा—

'मदन'

पुरानी अनारकली,
लाहौर।

मेरी शकुन्तला,

तुम्हारे बिना जीवन निरर्थक प्रतीत हो रहा है। अब इस शुष्क और नीरस नगर को तिलांजलि ही देनी पड़ेगी। अभी-अभी तुम्हारा पत्र पढ़ रहा था। मानों प्रेम की धारा में बहा जा रहा था। स्वर्ग में नदी के किनारे बैठा प्रेम के गीत सुन रहा था। अब पत्र समाप्त कर चुका हूँ। मुहब्बत का गीत भी ख़तम हो गया है; किंतु इसकी गूँज अभी तक कानों में झंकृत हो रही है, हृदय में दूर तक चुभी चली जा रही है।

विश्वास नहीं होता कि वह आठ दिन और आठ रातें मैंने तुम्हारे साथ व्यतीत की थीं और उस आख़िरी रात—जो मेरे इस नीरस जीवन की एक मात्र सुन्दर, मादक और लालित्य-पूर्ण रात है—मैं तुम्हारे पास था। वह रात, जिसमें प्रेम के ख़ामोश तराने खिड़कियों से आनेवाली वायु में मिलकर आकाश की ओर उड़ जाते थे; वह रात, जिसमें मेरा हृदय उल्लास के समुद्र की तह तक पहुँच गया था, मैंने तुम्हारे साथ व्यतीत की थी। विश्वास हो, चाहे न हो, किन्तु स्मृति बता रही है कि उस रात मैं तुम्हारे पास था, प्रसन्नता के शिखर पर जा चढ़ा था। आनंद की चरम सीमा पर पहुँच गया था!

मैंने कहा था—'शकुन्त!' तुमने मुस्कराकर धीमे स्वर से उत्तर दिया था—'जी!' मेरे समस्त शरीर में सनसनी दौड़ गई थी। इन दो शब्दों में कितना आकर्षण, कितनी मोहनी छिपी हुई है, कह नहीं सकता। हाँ, इतना अवश्य कहूँगा कि इस समय भी जब वायु अपने अट्टहास से मकानों की नीवें तक हिला रही है, जब बादल गड़-गड़ करके गरज रहा है, जब आँधी के तीक्ष्ण और तेज झोंकों से बिजली की लाइन ख़राब हो गई है, मकानों के किवाड़ खड़खड़ा रहे हैं और चारों ओर एक कोलाहल-सा मचा हुआ है, मेरे कानों में कोई धीमे स्वर से 'जी' कह रहा है। जीवन में आनन्द की एक लहर दौड़ जाती है, हृदय के अन्धकार में एक प्रकाशवान किरण चमक उठती है और मनका तिमिरपूर्ण मंदिर इस स्वर्गीय ज्योति से जगमगा उठता है।

मैंने कहा था—शकुन्त ! इस रात के पश्चात् दिन न हो। यह रात एक लम्बी—बहुत लम्बी—प्रलय-पर्यन्त लम्बी रात में परिणत हो जाय, और हम दोनों इस कमरे की छत के नीचे, एक दूसरे में लीन होकर प्रेम के राग अलापते रहें, प्रीति के गीत गाते रहें; कामनाओं—पूरी न होने वाली कामनाओं, आशाओं—सत्य न होले वाली स्वप्न-जगत् की आशाओं के गढ़ बनाते रहें और एक-दूसरे में खो कर रह जायँ, अथवा इसके पश्चात् मैं न रहूँ। आनन्दातिरेक के पश्चात् दुःखातिरेक नहीं सहा जाता, दुखी हृदय से विरह की अग्नि में नहीं जला जाता। तुम उदास हो गई थीं और मैं हँस दिया था। और फिर तुम हँस दी थीं और मैं रो दिया था। फिर तुमने मध्यम सुर में अपने गीतों से मुझे बहलाने का प्रयत्न किया था। वह गीत अब भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। सुख के कुछ पल—कुछ बहुमूल्य पल—व्यतीत हो गये हैं और दुःख की लम्बी—न समाप्त होने वाली—घड़ियाँ आरम्भ हो गई हैं।

मैं लैम्प के धुँधले प्रकाश में पत्र लिख रहा हूँ। बिजली की लहर अभी तक नहीं आई; किन्तु लैम्प का तेल समाप्त हो चुका है। मैं एक तरह अँधेरे में ही पत्र लिख रहा हूँ। शुष्क बत्ती जल रही है और जला हुआ गुल चमक रहा है। अब और नहीं लिखा जाता।

तुम्हारा—'मदन'

पुरानी अनारकली,
लाहौर।

मेरी शकुन्तला,

तुम शिकायत करती हो, मैं तुम्हें भूल गया हूँ। पागल! यह क्या लिख दिया तुमने? क्या दुनिया रहते ऐसा हो सकता है? तुम्हारा चाँद-सा सुन्दर मुखड़ा, तुम्हारी मद-भरी आँखें, फूल की पँखुड़ियों से मुसकराते हुए ओंठ भुलाये जा सकते हैं कहीं? वह मुखड़ा, जिसे मैंने दिल के अज्ञात परदों के अन्दर छिपा रखा है; वह आँखें, जिनसे मैंने मस्ती का एक घूँट भर कर बेसुध होने का प्रयास किया है; वह ओंठ, जिनसे तनिक-सी मुस्क-

राहट छीनने के लिए मैं बेचैन रहा हूँ, कहीं भुलाये जा सकते हैं ? एक ही में शकुन्तला, तुमने मुझ पर यह दोष आरोपित कर दिया। यह न पूछा कि मैं किन कठिनाइयों में घिरा हुआ हूँ। तुम्हें क्या मालूम कि हर समय तुम्हारा चित्र सामने रखनेवाला मंदन इस समय किन मुसीबतों में घिरा हुआ है ? शकुन्त, एक तो पत्रकार का जीवन ही स्वयं एक विपत्ति है, फिर उस पर तुम्हारी जुदाई ! इतना ही नहीं, बल्कि इन दो मुसीबतों के साथ बीमारी का दुःख भी कुछ कम नहीं। ज्वर की तीव्रता ने तुम्हारे मदन को अपनी छाया बना दिया है।

मैंने तो प्रायः निश्चय किया है कि इन दैनिक पत्रों के झंझट से छुटकारा पालूँ और इनको छोड़ कर तुम्हारे पास आ रहूँ। दिन को एक बजे से छः बजे तक, रात को नौ से दो बजे तक सिर-खपाई ! मुझसे अब यह कर्तव्य न निभाया जायगा। मैं इसे छोड़ दूँगा। काम की ज़्यादती ने मुझे अधमरा कर दिया है और सच पूछो तो मुझमें जान ही कहाँ थी ? मैं तो जब से जालन्धर से आया हूँ, जीवन को वहीं छोड़ आया हूँ। यहाँ तो न जानें कैसे चल फिर रहा हूँ। दिल और दिमाग़ तो तुम्हारे पास रहते हैं शकुन्त ! हाँ, शरीर अवश्य चलता-फिरता नज़र आता है।

मेरे मित्र मुझ पर हँसते हैं। वह व्यंग के तीर छोड़कर मेरा उपहास करते हैं; किन्तु वह क्या जानें दिल की लगी किसे कहते हैं ? इसका अनुभव तो कुछ वही लोग कर सकते हैं, जो दिल रखते हैं। मेरे मित्र हृदय-हीन हैं। वह पत्रों की दुनिया में रहने वाले कुएँ के मेंढक हैं, जिनका बिवाह हुए एक समय बीत चुका है और जो घटनाओं और समाचारों के उलट-फेर में पड़कर सच्चे और स्वर्गीय आनन्द को भूल चुके हैं। मैं इस पवित्र प्रेम को, इस असीम आनन्द को भूल जाऊँ, यह मेरी शक्ति से बाहर है। यह मेरा जीवन है, जीवन का आधार इसी पर है। इसके बिना तो मेरी काया भी काम करने से जवाब दे देगी। मैं तो तुम्हारी मुहब्बत का अभिलाषी हूँ, तुम्हारी प्रेम-भरी दो सरल बातों का भिखारी हूँ, पत्रकारों का यह शुष्क जीवन मुझे नहीं चाहिए। शीघ्र ही इससे छुटकारा पा जाऊँगा।

तुम्हारा—'मदन'

पुरानी अनारकली,

शकुन्तला, लाहौर।

क्रम से तुम्हारे कई पत्र मिले। मेरी बेबसी समय पर उत्तर न दे सकी। सच जानों, मेरा रत्ती भर भी दोष नहीं। जालिम बुखार ने सुध ही नहीं लेने दी। अब तो कुछ दिन आराम करूँगा।

तुम आग्रह करती हो कि मैं तुम्हें सेवा का अवसर नहीं देता। तुम आने के लिए ज़िद कर रही हो; किन्तु तुम्हीं सोचो, मैं तुम्हें सुख और आराम पहुँचाने के बदले उलटा दुःख में कैसे डाल दूँ? लाहौर में बेहद गरमी पड़ रही है, हर वस्तु भुनी जा रही है। तुमने पत्रों में 'हीट स्ट्रोक' और 'सन् स्ट्रोक' के समाचार पढ़े होंगे। ऐसी हालत में तुम्हें लाहौर आने के लिए सोच करने की आवश्यकता नहीं। शीघ्र ही स्वस्थ हो जाऊँगा। जरा गरमी का ज़ोर कम हो तो तुम्हें बुला लूँगा। मेरे हृदय में जो अग्नि प्रज्वलित है, बाहर की आग के साथ वह भी ठंडी हो जाएगी।

तुम्हारा—'मदन'

जालन्धर के एक सुन्दर छोटे-से कमरे में शकुन्तला बैठी थी। उसके सामने उसके स्वामी के पत्र पड़े थे और उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी।

उसका विवाह लाहौर के प्रसिद्ध पत्रकार मदन मोहन से हुआ था। विवाह के पश्चात् केवल आठ-दस दिन उसने अपने पति के साथ व्यतीत किये थे। यही आठ-दस दिन थे, जिनमें उसे सुहागका आनन्द प्राप्त हुआ था। इनकी सुस्मृति रह-रह कर उसके हृदय में काँटे चुभो रही थी। उसके पति का सुन्दर और सुगठित चित्र उसके सामने नाच रहा था। वह सोचती—वह बीमार होंगे। बुख़ार ने उन्हें अधमरा कर दिया होगा। उसे अपने आप पर ग़ुस्सा आरहा था। कई दिन से उसके हृदय में द्वन्द्व जारी था—वह लाहौर चली जाय, अपने पति की सेवा शुश्रूषा करे। उनमें डाक्टर के यहाँ तक जाने की हिम्मत न होगी, नौकर उन्हें ध्यान से दवाई न

पिलाता होगा। वह चली जायगी, तो यह सब कुछ भली भाँति हो जायगा। आखिर स्त्री का कर्तव्य भी क्या है ?

शकुन्तला सोचती—जब मैं ही उनके काम न आई, तो मेरा होना-न-होना एक बराबर है। उन्होंने मुझे गर्मी की वजह से लाहौर आने से रोका है। क्या यहाँ गरमी नहीं पड़ती ? यहाँ आग नहीं बरसती ? लाहौर की गरमी मुझे खा न जायगी, जला न डालेगी। मेरी और सहेलियाँ भी तो लाहौर में रहती हैं। उन्हें क्या गरमी खाये जाती है ? शीला ने मुझे वहाँ पहुँच जाने, अचानक वहाँ पहुँच जाने की सम्मति दी है। फिर क्यों न उसी की सलाह पर चलूँ ? मुझे देखकर हैरान हो जायँगे, अवाक् रह जायँगे !

और आज के अन्तिम पत्र को देखकर उसके धैर्य का बाँध टूट गया था। उसने निश्चय कर लिया था, मैं अपने प्रिय के पास अवश्य ही चली जाऊँगी। इससे अधिक वह कुछ न सोच सकी थी।

बाहर सन्ध्या का अँधेरा प्रतिक्षण बढ़ रहा था। दूर—बहुत दूर—गाड़ी के इर्द-गिर्द घूमनेवाले वृक्षों का दायरा आँखों से ओझल हो चुका था। गरम वायु के झोंके खिड़कियों के रास्ते जनाने डिब्बे में प्रवेश कर रहे थे। सरल हृदय स्त्रियाँ एक दूसरी से अपने सुख-दुःख की कहानी कह रही थीं और दो बूढ़ी स्त्रियों में किसी साधारण-सी बात पर झगड़ा हो गया था। कमरे में एक विचित्र कोलाहल मचा हुआ था।

शकुन्तला इसी डिब्बे के एक कोने में गरदन झुकाये बैठी थी। वह अपने पति को देखने के लिए लाहौर जा रही थी, और इस कुहराम की दुनिया से दूर किसी और ही संसार की सैर कर रही थी, जहाँ कोलाहल न था और न थी भीड़, केवल वह थी और उसका प्रिय रोगी पति।

लाहौर आ गया। वह उतर पड़ी। उसके पास कोई सामान नहीं था। स्टेशन पर कोई भीड़ न थी। बैग को दायें हाथ में थामे हुए उसने टिकट कलेक्टर को टिकट दिया। पुल को पार करके ताँगों के अड्डे पर आई और एक ताँगे में बैठ गई।

'कहाँ चलोगी ?'

'पुरानी अनारकली।'

ताँगा चल दिया। वह अपने विचारों की गहराइयों में गुम हो गई। उसकी जेब में उसके पति के पत्र पड़े थे, और उनका एक-एक अक्षर उसकी आँखों के सामने घूम रहा था।

बाईबिल सोसाइटी के सामने ताँगा रुका। वह उतरी। सामने गली में पहला मकान उसके पति का था। उसने इतमीनान करने के लिए लेटरबॉक्स पर निगाह डाली और धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। आनन्द और उल्लास से उसका हृदय काँप रहा था। वह किवाड़ खटखटायेगी और जब वह दरवाजा खोलेंगे, तो उसे देखकर अवाक् रह जायँगे। वह हँस देगी—क़हक़हा मारकर हँस देगी ! सीढ़ियाँ ख़तम हो गईं। किवाड़ की दरार से प्रकाश की एक लकीर सामने की दीवार पर पड़ रही थी। उसके कानों में उसके पति की आवाज़ आई। उसने दरार से देखा। वह काँप उठी। उसका पति बड़े कोच पर एक सुन्दर युवती को बग़ल में लिये बैठा था। सामने बिजली का पंखा पूरी रफ़्तार से चल रहा था। उसने युवती की ठोढ़ी को ऊपर उठाया हुआ था और उसकी आँखों में आँखें डाल दी थीं।

शकुन्तला ने सुना, वह कह रहा था—तुम्हें भूल सकता हूँ लीला ? तुम्हारा चाँद-सा सुन्दर मुखड़ा, तुम्हारी मद-भरी आँखें, फूल की पँखड़ियों जैसे तम्हारे मुस्कुराते हुए ओंठ भुलाये जा सकते हैं कहीं ?

सब वही शब्द थे, जो उसने एक महीना पहले शकुन्तला की स्तुति में लिखे थे। वह धीरे-धीरे सीढ़ियों से उतर आई। ताँगा चला गया था। वह स्टेशन की ओर चल दी—निस्पंद, मूक, निष्प्राण।

तार बाबू

सादिक़ हस्न जब दस वर्ष का था तो उसके मन में इस बात का पूर्ण विश्वास था कि वह बड़ा होकर महान चित्रकार बनेगा और उसके इस विश्वास का फल बेचारी स्कूल की कापियों को भोगना पड़ता था; जब वह सोलह वर्ष का हुआ तो उसने जाना कि वह तो अभिनेता बनने के लिये पैदा हुआ है और उसके इस विश्वास के फल-स्वरूप उसके घरवालों को बहुत दिनों तक उसकी भाव-भंगियों का निरीक्षण करके उसका प्रोत्साहन करना पड़ा, जिनका प्रदर्शन वह हर नयी फ़िल्म को देखने के बाद किया करता था और जब वह बीस वर्ष का हुआ तो अचानक एक दिन उसे महसूस हुआ कि वह तो एक स्वभाविक कवि है और सुन्दरतम् भावनाएँ उसके हृदय में पड़ी अभिव्यक्ति के लिये तड़प रही हैं। लेकिन इसे विधि की क्रूरता कहिए कि जब कालेज छोड़ने के बाद उसने जीवन आरम्भ किया तो वह न चित्रकार था, न अभिनेता और न कवि, बल्कि तख़्त महल के रेल्वे स्टेशन पर तार बाबू था (जहां तख़्त या महल तो दूर रहा, मीलों तक पक्की छोड़, कच्ची ईंटों की सड़क भी न दिखाई देती थी) ।

कभी कभी जब अपनी एकाकी घड़ियों में सादिक़ हस्न गहन विचारों में तल्लीन होता तो नियति की यह क्रूरता सदैव एक घटना के रूप में उसके सामने मूर्तिमान हो जाती...सदैव एक ही घटना के रूप में !

इस घटना का सम्बन्ध उन दिनों से है जब उसे अपने अन्तर में कवित्वशक्ति की अनुभूति हुई थी और ग़ालिब और ज़ौक से लेकर वर्तमान युग के प्रत्येक जाने-माने कवि की तर्ज़ पर उसने ग़ज़लें और नज़्में कह डाली थीं।

यह तब हुआ था जब अपनी फूफी की लड़की रीहाना सादिक़ हस्न को कुछ अजीब अजीब सी लगने लगी थी...रीहाना और वह साथ साथ खेले कूदे और बड़े हुए थे और पर्दा भी दोनों में किसी तरह का न था। कई बार आँख मिचौनी खेलते खेलते वह उसे आलिंगन-बद्ध भी कर लिया करता था, या गेंद उछालते उछालते जब वह गेंद दबोच लेता तो उसे छीनने के लिये वह उससे लिपट जाया करती थी और वह उसे निर्द्वंद्व भाव से पीट भी दिया करता था......कभी किसी प्रकार की झिझक या संकोच दोनों के बीच न आया था।

लेकिन अब वह बात न रही थी। वह फूफी के घर जब जाता, रीहाना सकुचाई, लजाई-सी सामने आती। उसे देखती, तो भी चोरी से किवाड़ की, स्तम्भ की, अथवा स्वयं फूफी की ओट से। और जब कभी सादिक़ हस्न के शरीर का कोई कपड़ा भी उसे छू जाता तो उसका मुख कानों तक लाल हो जाता और रहा पीटना...तो एक दिन फूफी के घर केला खाकर छिलका उसने आंगन में फेंक दिया और रीहाना (जिसकी चाल में सादिक़ हस्न की उपस्थिति में एक अजीब प्रकार की स्फूर्ति आ जाती थी) उस पर फिसल पड़ी। कोई ऐसी चोट उसे नहीं आई और किसी की सहायता पहुँचने से पहले ही अपने आप उठकर वह अपने कमरे में भाग गई, किन्तु सादिक़ हस्न को ऐसा लगा जैसे कोई बड़ा अपराध उससे बन पड़ा हो। अवसर पाते ही उसने माफ़ी मागी:—"तुम्हारे चोट तो नहीं आई?"

वह दोनों हाथों में आटे से भरी हुई परात थामे अन्दर कोठरी से आ रही थी......चलते चलते वह मुस्कराई और मुख लाल हो गया।

और बड़ी कठिनाई से जैसे हकलाते हुए उसका रास्ता रोक कर सादिक़ हस्न ने कहा, "मुझे माफ़ कर दो!"

तब वह रुक न सकी थी। ठहाका मार कर हंस दी थी—इस तरह कि दुपट्टा उसके सिर से उतर गया था और कानों में लटकते हुए बुन्दे जैसे झुनझुना उठे थे और "मुझे रास्ता दो" कहती हुई सिर को जैसे अपने विशाल वक्षस्थल में छिपाने का प्रयास करती वह भाग गई थी।

उसी दिन सादिक़ हस्न को पहले पहल मालूम हुआ कि रीहाना का

वह मुखड़ा जिसकी प्रशंसा में वह बड़ी ऊल-जलूल उपमाएँ दिया करता था—वह बिज्जू का–सा बीमार मुखड़ा, उसकी आँखों में बस गया है। उस चेहरे ने, उसने महसूस किया, जैसे केंचुली ही उतार दी है—कोई आभा थी, कोई लाली थी उस पर। वह भला उसकी माप कैसे करता ? वह तो बस इतना जानता था कि जब वह अपनी क्लास में बैठा प्रोफ़ेसरों के लम्बे लम्बे, थका देने वाले लेक्चर सुना करता—ख़ास तौर पर जब दर्शन-शास्त्र के अध्यापक की, धीमी मोटी लम्बी लय में शब्दों का उच्चारण करने वाली आवाज़, दर्शन के किसी उलझे हुए सूत्र को सुलझा रही होती, तब सदैव उसकी आँखों में रीहाना का वही सुन्दर मुखड़ा आ बसता।

और तभी वह कवि बन गया था और वहीं क्लास रूम में बैठे बैठे कापियों अथवा किताबों के हाशियों और कवरों को स्याह किया करता था, और कभी कभी उन अनजाने देशों में खो जाता था, जहां युग घड़ियां बन जाते हैं और घड़ियां पल और समस्त ऋतुएं एक अनन्त वसन्त में परिणत हो जाती हैं।

और उन्हीं दिनों में उसने पहली बार रात को छत पर लेटे लेटे ढेर की ढेर चांदनी को देख कर पहला दीर्घ निःश्वास खींचा था और मन ही मन कहा था, " किस क़यामत की है चांदनी ! "

वह अपनी भोली भाली जवानी की पहली मुहब्बत को बड़े यत्न से पाल रहा था और प्रतिदिन स्वप्नों के संसार बनाने में मग्न रहता था जब एक दिन उसने सुना कि उसके फूफा रीहाना की सगाई एक इंजीनियर के लड़के से पक्की कर आए हैं।

वह स्तब्ध, मर्माहत-सा पड़ा रह गया था। उसे ऐसा लगा था जैसे उसकी कल्पनाओं के समस्त प्रासाद धराशायी हो गए हैं-कई दिन तक वह फूफी के घर न गया था। रूठा रहा था—ग़रीब क्लर्क का भावुक बेटा ! उसे कौन मनाने जाता ?

और शनैः शनैः उसकी घायल मुहब्बत उदासीनता में परिणत हो गई। उस समाचार को सुनने के बाद जैसे रीहाना के सामने जाने-तक में उसे

झिझक महसूस होने लगी। फिर वह उनके घर गया ही न था। उसने कोई सौगंध खाई हो, यह बात न थी, पर उसकी उदासीनता सौगंध ही की हद को पहुंच गई थी।

अपनी ओर से अन्तर की सुदृढ़-भावनाओं से मुहब्बत की पक्की धरती पर उसने कल्पना का महल बनाना आरम्भ किया था, लेकिन उसे क्या मालूम था कि दुनिया में धन के बिना प्रायः मुहब्बत की दृढ़ धरती भी रेतीली बन जाती है और आंसुओं के पानी तक से भी उसकी नींव जमने में नहीं आती।

कालेज में अब उसका जी न लगाता था...उसकी रूह जैसे अपनी समस्त शक्तियों से उसे फूफी के घर की ओर खींचती थी, किन्तु उसका मर्माहत गर्व जैसे घायल अजगर की भांति फन उठाकर उसका रास्ता रोक लेता। कभी जब तबियत बहुत उचाट होती तो वह लम्बी सैरों को निकल जाता, अथवा मित्रों में जाकर बड़े लम्बे लम्बे क़हक़हे लगाता।

इसी तरह लगभग एक वर्ष बीत गया और रीहाना के विवाह का दिन समीप आ गया। उसे जाना पड़ा, और जब जाना पड़ा तो रीहाना से साक्षात भी करना पड़ा, अरूसी जोड़े में आवृत उसका हुस्न अपने में समा न पाता था। उसके शरीर पर तो शलवार और कमीज़ ही थी और सिर पर भी दुपट्टा ही था, पर इस शलवार क़मीज़ और दुपट्टे की और ही बात थी। विवाह की समस्त दमक और समस्त उल्लास जैसे उनसे फूटा पड़ता था। उसके सौंदर्य को जैसे इनसे पंख लग गये थे और सूक्ष्म प्रमाणुओं के साथ जैसे वह फ़िज़ा के कण-कण में उड़ा फिरता था।

लेकिन सादिक़ हुस्न को आश्चर्य हुआ जब उसने देखा कि उसके चेहरे पर उस उल्लास का कोई चिह्न नहीं, जो सरल से सरल और भोली से भोली लड़की में भी ये कपड़े पैदा कर देते हैं। इसके विपरीत उसने देखा कि उसका चेहरा प्रशांत समुद्र जैसा गहरा ह, और आँखें, सादिक़ हुस्न ने सोचा जैसे वह स्वयं भी उनका किनारा न पा सकेगा।

वह आँख बचा कर निकल जाना चाहता था कि रीहाना ने आर्द्र कंठ

से कहा –" भाई इतनी रुखाई भी क्या ? मुझसे क़सूर बन पड़ा हो तो माफ़ कर देना । "

सादिक़ हस्न ने आँखें उठा कर देखा। उसने महसूस किया कि यह वह रीहाना तो नहीं—यह शोख़ चंचल सरिता की उच्छृंखल ऊर्मि ऐसी लड़की । और कपड़े उसने चाहे भड़कीले ही डाल रखे हैं, पर मालूम होता है जैसे उसकी रूह अन्दर ही अन्दर मसली जा रही है ।

उसी वक्त सादिक़ हस्न की फूफी–रीहाना की मां–वहां पहुंच गई, पुलाव का थाल लिये । "अरे छिद्दे, अरी रहमी, अरी एमन ! मर गये सब !" कहती हुई सादिक़ हसन चुप चाप फूफी के हाथ से पुलाव का थाल लेकर चल पड़ा था । रीहाना शायद मां की आहट पाकर ही खिसक गई थी । पर सादिक़ हस्न की बड़ी आकांक्षा थी कि अवसर मिले तो वह उसके पांवों पर गिर कर माफ़ी मांगे, किन्तु उसी शाम वह रुख़सत हो गई थी ।

और यह दूसरा मौक़ा था जब चांदनी रातों की क़यामत का उसे पता चला था। कार्तिक का महीना था और चांद जैसे आकाश में लटक-सा गया था और पहली बार उसने सारी रात जाग कर गुज़ार दी थी ।

इसके बाद रात को जब बिस्तर पर वह लेटता और नींद उसे न आती तो वह सोचा करता कि वह क्यों साल भर उधर न गया। रीहाना को कितना दुःख हुआ होगा । वह उसे कितना बेवफ़ा समझती होगी। यह ठीक है कि प्यार के नाम पर उनमें कभी एक बात न हुई थी, किसी प्रकार का अहदो पैमान न हुआ था, प्रतिज्ञा भी दोनों में से किसी न किसी प्रकार की न की थी, किन्तु फिर भी अन्तर के तार दोनों के किसी अज्ञात शक्ति ने मिला दिये थे ।

और अब सादिक़ की रूह में कोई कचोके लेता था कि क्यों एक क़ीमती वर्ष उसने यों ही गुज़ार दिया, क्यों वह उससे रूठा रहा–क्या हुआ यदि वह उसकी पत्नी न होती ! क्या उन दिनों की सुखद स्मृति ही इन लम्बे सूने दिनों को काटने में सहायता न देती !

और उस वर्ष वह बी. ए. में फ़ेल हो गया था। पिता ने कोशिश करके उसे रेल में भरती करवा दिया था और मुग़लपुरा के वाल्टन ट्रेनिंग

स्कूल म तार आदि की शिक्षा लेने और रीलीविंग में पांच छै महीने खाक छानने के बाद तख्त महल में आ लगा था। उसने असिस्टैंट स्टेशन मास्टर की परीक्षा पास कर रखी थी और यद्यपि वह असिस्टैंट स्टेशन मास्टर ही था, पर आम लोग उसे तार बाबू ही कह कर पुकारते थे और इसी नाम से वह इधर के इलाके में प्रसिद्ध था।

बिवाह उसने फिर नहीं किया, या यों कहना चाहिए कि पहले पहल रीलीविंग में लगने के कारण दो दिन इस स्टेशन पर और चार दिन उस स्टेशन पर, इस तरह सारे डिवीज़न में घूमते रहने के कारण उस थोड़े से यत्न का जो घर बसाने के लिये जरूरी है उसे अवसर नहीं मिला। इसका कारण उसकी अन्यमनस्कता और उदासीनता भी किसी क़द्र हो सकती है, जो जीवन में प्रायः पहले प्यार की असफलता पर मन में हो जाया करती है। बहरहाल वह बिवाह नहीं कर सका।

तख्त महल के इस सूने वातावरण में सादिक़ हस्स के कलाकार मन को केवल दो ही चीजों से मुहब्बत थी—एक तो थी तार की टिक टिक, जिसमें उसे मानों कोई मादक संगीत सुनाई देता था और जिसमें अपने मन की सारी उद्विग्नता को वह पूर्ण रूप से लीन कर देता था और दूसरी चीज़ थी वीराने की शुभ्र स्निग्ध व्यापक चांदनी......

उस समय जब रात सायँ-सायँ करती और टेलीग्राफ़ की तार अथवा किसी घने ओकांह की शाखों में बैठा हुआ कोचर का जोड़ा अपने कर्कश स्वर से वीराने को गुंजा देता, जब मरुस्थल के वृक्ष, सरकंडे और रेत के टीले अंधेरे में खो जाते और कृष्ण पक्ष की मद्धिम चांदनी भी वीराने की विशालता में खो कर रह जाती, सादिक़ हस्न की ड्यूटी न होती और नींद की देवी भी रूठी हुई होती तो उठ कर वह स्टेशन का एक चक्कर लगाया करता।

मुसाफ़िरखाने के अंधकार में सोया हुआ कोई कुत्ता अचानक झपट कर भूंक उठता, किन्तु फिर सुबह-शाम अपने अन्न देनेवाले को पहचान कर चूं चूं करता हुआ और दुम हिलाता हुआ तार बाबू के पांवों में आकर लोटने लगता।

कभी ऐसे समय में अगर स्टेशनमास्टर किसी गाड़ी की प्रतीक्षा में तार खटखटा रहा होता तो वह अपनी कुर्सी पर बैठे बैठे तार बाबू की परिचित पदचाप सुन कर कहता—"सुनाइये जी, घूम रहे हैं!"

और वह उत्तर देता—"कमबख्त चांदनी क़यामत की है!"

एक तीसरी चीज भी थी जिससे तार बाबू को स्नेह था, और वह थी उसके आंगन में लगी हुई मेंहदी की क्यारी। अनोख सिंह की 'कॉट' के मालिक सरदार अनोख सिंह अपने इलाके माझे से मेंहदी के बीज लाये थे और खाले की मिट्टी और खाद डलवा कर सादिक़ हस्न ने वहां मेंहदी लगाई थी।

असौज की चांदनी रातों में जब उसे नींद न आती और घूमता घूमता वह थक जाता तो मेंहदी की क्यारी के पास बिछी हुई अपनी चारपाई पर आकर लेट जाता।

ठंडी ठंडी हवा चलती, सफ़ेद सफ़ेद फूलों की भीनी ख़ुशबू मन–प्राण पर छा जाती। आँखों के सामने सदैव रीहाना के कोमल कोमल हाथ आ जाते जो विवाह के दिन मेंहदी से लाल हो रहे थे और कभी कभी कल्पना ही कल्पना में वह उन्हें चूम लिया करता था।

तभी ओकांह के घने वृक्ष की शाखाओं में छिपा हुआ कोचर का जोड़ा किचर–किचर कर उठता, या दूर वीराने में कोई जागृत टिटिहरी बेचैनी से टीहुं टीहुं करने लगती।

निशानियाँ

मैंने रूमाल उठा लिया और इधर-उधर देखकर तुरन्त अपने कमरे में भाग आया। अभी-अभी सरला दरवाज़े के सामने से होकर गई थी। सौरभ, मद और संगीत की त्रिवेणी प्रवाहित कर गई थी। यह रूमाल उसीका था। जल्दी में गिर गया था। मैंने इसे एक बार हवा में लहराया, एक कोने में सुन्दर फूल था और उस पर लिखा हुआ था–'सरला'। ममता के उन्माद में मैंने उसे चूम लिया। बाहर किसी के पैरों की आहट सुनाई दी, मैंने एकदम रूमाल को कोट की भीतरी जेब में रख लिया। मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा। किसी नौजवान सुन्दर कुमारी का रूमाल उठा लेना, और फिर उसे चूम लेना, यदि जमना देख ले, तो कैसा हो? प्रलय आ जाये। वह आँखों को मूर्तिमान प्रश्न बनाकर मुझ से इसकी कैफ़ियत पूछे और मैं मौनावतार बनकर रह जाऊँ। फिर उसकी आँखों में आँसू हों और मेरी आँखों में लज्जा, ग्लानि।

मैं जानता हूँ यह पाप है। प्रेम करने वाली पतिव्रता स्त्री के होते हुए, ऐसा करना पाप है। बार-बार सोचता हूँ, बार-बार प्रतिज्ञा करता हूँ, अब आँख उठाकर भी उधर न देखूँगा। उसकी सुरीली, आवाज़ सुनते ही खुली किताब रखकर सारे शरीर को कान बनाकर कमरे में न बैठा रहा करूंगा; उसके प्रत्येक आग्रह को पूरा करने के लिए लालायित न फिरूँगा; किन्तु एक झलक, एक आवाज, एक मुस्कराहट मेरे सारे इरादों पर पानी फेर देती है। मेरी प्रतिज्ञाएं हवा हो जाती हैं, पानी का बुलबुला बन जाती हैं और मैं बन जाता हूँ शिकारी–छिपकर शिकार की प्रतीक्षा करने वाला–कान लगा कर उसकी ध्वनि सुननेवाला–दाने के परदे में जाल बिछाने वाला।

आदम, इस बात को जानते हुए भी कि फल को चखने की मनाही है, उसके रसस्वादन की लालसा को न रोक सका था—उसने उसे चख ही लिया था। मैं भी प्रायः ऐसे ही प्रयास में लगा हुआ था। उसका परिणाम भयानक था, मेरा एक राम जानें!

कुछ क्षण, नहीं इससे भी कम समय में यह सब बातें मेरे मस्तिष्क में पैदा हुईं और मिट गईं; किन्तु रूमाल मेरी जेब में रहा, दिल धड़कता रहा और शरीर एक अनिर्वचनीय आनन्द को अनुभव करता रहा।

पैरों की चाप निकटतर होती गई। मैंने रूमाल को भली भाँति जेब में ठूँस लिया और आने वाले के साथ ही जैसे सौरभ और संगीत वापस लौट आये। कमरे में ज्योति भी चमक उठी। हृदय की धड़कन तेज़ हो गई और मुख भी कुछ फ़ीका-सा पड़ गया। सरला का मधुर स्वर—'मेरा रूमाल तो नहीं देखा?'

मैंने सिर हिला दिया, उत्तर देने का साहस ही न हुआ।

वह मुस्करा कर चली गई। मैंने फिर रूमाल निकाल लिया और उसे अपने दोनों हाथों पर फैलाकर चेहरे को ढाँप लिया। शरीर में एक ठंडक की लहर दौड़ गई, और हृदय इस 'डबल गुनाह' पर क़हक़हा मार कर हँस पड़ा।

'यह मुँह ढाँपे क्या कर रहे हो?'

मैं चौंक पड़ा, देखा, जमना, मेरी पत्नी, हैरान-सी खड़ी मेरी ओर देख रही है। मैंने रूमाल फिर जल्दी से जेब में ठूंस लिया। चेहरा शायद पहले से भी श्वेत हो गया। अपनी खिन्नता को छिपाने के लिए मैंने जल्दी से पूछा—'डाकिया आया था?'

'मालूम नहीं, परन्तु.........'

'मुझे एक-दो आवश्यक पत्रों की प्रतीक्षा थी'—यह कहता और जमना के गाल पर हलकी-सी चपत लगाता हुआ नीचे बैठक में चला गया और किताब बन्द करके आराम कुर्सी पर लेट गया। कुछ क्षण इसी तरह ड़ा रहा, फिर मैंने वह रूमाल निकाला, इधर-उधर देखा, कहाँ

छिपाऊँ, कहाँ रखूँ—उसकी निशानी है, उसने आप न दिया हो, पर है तो उसकी ही, फिर क्या इसे देखते ही उसकी याद ताजा न हो जायगी, कल्पना उसे स्वयं लाकर मेरे सामने खड़ा न कर देगी ? ऐसी बहुमूल्य चीज क्यों लौटाता ? उठा, आल्मारी में संगमरमर की नन्हीं-सी सुन्दर डिबिया रखी थी। लाहौर-काँग्रेस में जो प्रदर्शिनी हुई थी, वहीं से ख़रीद लाया था। उस पर अत्यन्त लालित्यपूर्ण, आँखों में खुब जाने वाली चित्रकारी की हुई थी। मैंने रूमाल को तह किया। एक चिट पर लिखा—'सरला की निशानी' और नीचे अपना नाम लिखकर उसे रूमाल के साथ एक खूबसूरत पिन से टाँक दिया।

दूसरे क्षण रूमाल डिबिया में बन्द मेरे सामने मेज़ पर था। उसका, सरला का रूमाल, कोई सारे संसार का ऐश्वर्य, सारी दुनिया की सम्पत्ति मेरे हाथ पर रख देता और इसे मुझसे माँगता, तो मैं न देता। सत्य कहता हूँ, कभी यह सौदा न करता।

सरला जमना के पास रोज़ आती थी। क्यों आती थी, और यदि आती थी, तो घण्टों क्यों बैठी रहती थी। यह सब कुछ मुझे नहीं मालूम। हाँ, अपने विषय में कह सकता हूँ, वह जब तक वहाँ बैठी रहती, मैं और कोई काम न कर सकता। आँखें किताब में गाड़े पास के कमरे में बैठा, उसकी मीठी-मीठी मधुर बातें सुनने में मगन रहता। और फिर जैसे उसके आने के सम्बन्ध में मुझे कोई ज्ञान ही न हो, अचानक उस कमरे में चला जाता और कुछ कहे बिना मेज़ पर पड़े हुए काग़ज़ों को उलट-पलटकर, दराज़ को एक-दो बार खोलकर और बन्द कर चला आता, उसकी ओर दृष्टि भरकर देखने का साहस ही न होता। हर बार उसे देखने के लिए जाता; किन्तु क्या मजाल, जो निगाह ऊपर उठ जाय, जमना के कारण झिझक जाता, न, यह बात न थी, जब जमना वहाँ न भी होती, तब भी यह साहस न होता।

सरला के पिता क्लर्क थे। हमारे कमरे से सटे हुए दो कमरे उनके

पास थे। लाहौर में अच्छे मकान का मिलना कठिन है और निर्धन के लिए तो लगभग असम्भव ही है। यदि यहाँ के किरायेदारों की अवस्था का चित्र खींचा जाय, तो ऐसी सनसनी पैदा करनेवाली घटनाएँ प्रकाश में आएँ, जिनसे शरीर के रोंगटे खड़े हो जायँ। फिर इस ग़रीबी की अवस्था में एक ही मकान में कई कुनबों के एक साथ रहने के कारण 'प्रेम और प्यार' के जो सफल और असफल खेल अनायास ही खेले जाते हैं, उन्हें लिखें, तो दफ़्तर-के-दफ़्तर स्याह हो जाएँ। सरला के पिता निपट निर्धन हों, यह बात न थी। डेढ़ सौ रुपया मासिक वेतन पाते थे; किन्तु लाहौर के डेढ़ सौ किस गिनती में! यहाँ चार-चार सौ पाने वाले भी असंतोष की गाड़ी के बैल बने हुए हैं। खर्च बढ़ा हुआ, आय उतनी थी नहीं, फिर कैसे तीस-चालीस का मकान ले सकते थे, फलतः पन्द्रह रुपयों में दो कमरे उन्होंने ले रखे थे और बीस में तीन मेरे पास थे, रसोई के कमरे अलग-अलग थे। मेरे पास एक बैठक भी थी और वहाँ मैंने अपना कार्यालय बना रखा था। इसका एक दरवाज़ा ड्योढ़ी में था और एक मुहल्ले की ओर। इसी में बैठकर मैं सरला के आने की बाट जोहा करता था।

वह प्रतिदिन ऊपरसे जल्दी जल्दी सुबह आती और चली जाती। शाम को स्कूल से आती और जल्दी जल्दी ऊपर चली जाती। मैं निगाह उठाकर भी न देख सकता। कभी वह मेरे कमरे के सामने मुहल्ले में सहेलियों से ऊँचे-ऊँचे स्वर में बात-चीत आरम्भ कर देती। मुझे अनुभव होता, जैसे वह मेरी ओर देखती भी है, मानों मुझे सुना-सुनाकर बातें कर रही है, किन्तु फिर भी आँखें ऊपर न उठतीं। कभी-कभी पाठशाला से आते समय सहेलियों से जुदा होने से पहले अपने मकान के सामने बहुत देर तक खड़ी बातें करती रहती। उस समय मैं भी खिड़की में से उसे देख लेने का साहस करता; किन्तु जब उसकी निगाहें मेरी ओर उठतीं, मेरी आँखें नीची हो जातीं।

उस दिन संध्या का समय था। वह पाठशाला से आई और एकदम सहेलियों से बिदा होकर खट-खट-खट सीढ़ियों पर चढ़ गई। मैं कुछ क्षण मंत्रमुग्ध-सा बैठा रहा, फिर लम्बी साँस लेकर उठा, उसके पैरों की चाप

फिर सुनाई दी, फिर बैठ गया। वह सीढ़ियाँ उतर कर रुक गई। चाप के अचानक बन्द हो जाने से मैंने जान लिया, वह कुछ सोच रही है, अथवा कोई वस्तु ऊपर भूल जाने से उसे फिर लाने का इरादा कर रही है।

दूसरे क्षण एक नर्म, नाज़ुक, गोरे हाथ ने मेरे कमरे की चिक को उठाया और सरला के सुन्दर चेहरे ने अन्दर झाँक कर देखा।

'मैं आ सकती हूँ ?'

मैंने सिर से इशारा कर दिया, ओंठ हिलाने का साहस न हुआ। उसके सामने मेरी जिह्वा मूक हो जाती थी। वह आई, उसके हाथ में एक खुली हुई किताब थी।

'ज़रा यह प्रश्न तो समझा दीजिए।'

मैंने कम्पित हाथों से किताब ले ली। मालूम होता था, मेरा मुख लाल हो गया। मैंने प्रश्न उसे समझाना शुरू कर दिया। वह मेज के दायें कोने पर हाथ रखे खड़ी रही। मैं उसे बैठने के लिए भी न कह सका। सवाल समझाता गया और कभी-कभी उसके गोरे हाथों और मेहँदी से रँगे हुए नाखूनों को देखता रहा।

मुझे गणित में विशेष रुचि है; यद्यपि कॉलेज को छोड़े कई वर्ष बीत गये हैं, तब भी कठिन-से-कठिन प्रश्न को हल कर सकता हूँ। बीज-गणित और अंकगणित मेरी उँगलियों पर हैं। मैंने प्रश्न उसे भली भाँति समझा दिया।

'धन्यवाद !'

वह कुछ और कहे बिना चली गई और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों यह शब्द मेरी श्रवणशक्ति पर छाकर रह गया।

दिन सप्ताह बने, सप्ताह महीने और महीने वर्ष बने; किन्तु मेरा प्रेम उसी अवस्था में स्थिर रहा, अचल रहा। यह चिनगारी आग न बनी, ज्वाला न बनी। प्रतिक्षण सुलग-सुलग सुलगते ही रहनेवाली चिंगारी की भाँति मेरे हृदय को जलाती रही। इसके बाद बीसियों बार सरला मुझ से प्रश्न समझने आई। उसने परीक्षाएँ पास कर लीं। उसकी सगाई भी हो गई;

किन्तु मैं अपने हृदय के सुलगते हुए भाव न प्रकट कर सका। मेरी चाल की लड़खड़ाहट, मेरी आँखों की बेचैनी, मेरी आवाज़ के कम्पन, मेरे चेहरे के परिवर्तनों से शायद उसने मेरे हृदय की अवस्था का अन्दाज़ लगा लिया हो, किन्तु जिह्वा ने इन मूक इशारों का साथ न दिया—ओठों से कभी मनोभिलाषा प्रकट न हुई।

इन दिनों जब कभी चित्त उचाट होता, कमरे को बन्द कर लेता, डिबिया खोलता, रूमाल को सामने रखकर उससे बातें करता। जब घरेलू आवश्यकताएँ मेरी निमग्नता का जादू तोड़ देतीं, तो फिर रूमाल को धीरे से, मुहब्बत से तह करके, चिट को उसी प्रकार टाँक कर डिबिया में बन्द कर देता। मनुष्य और उसकी निमग्नता भूले-बिसरे दिनों की साधारण-सी घटना कुछ क्षणों के लिए मिलने वाले की संक्षिप्त-सी स्मृति, किसी की याद को ताज़ा कर देने वाली कोई अकिंचन-सी चीज़ उसे तन्मयता के संसार में गुम कर देने के लिए काफ़ी है।

कभी-कभी जमना मुझसे इस प्रकार बदहवास रहने का कारण पूछती। मैं मौन रह जाता, उत्तर देने के लिए मेरे पास था ही क्या? यदि कुछ बहाना भी बनाता, तो इससे उसकी तसल्ली न होती, और न मेरे मन को चैन मिलता। ज्यों-ज्यों सरला के बिवाह की तारीख समीप आती, मेरी बेचैनी बढ़ती जाती, मेरी बैठक की खिड़कियाँ अधिक देर तक बन्द रहतीं, संगमरमर की डिबिया ज़्यादा बाहर निकलती और रूमाल से ज़्यादा बातें होतीं, यहाँ तक कि जब सरला के बिवाह के दिन बिल्कुल निकट आ गये, तो मैंने प्रतिदिन अपने कमरे में बैठकर अपनी भाग्य-हीनता पर अश्रुपात करना अपना नित्य का नियम बना लिया।

मेरी बैठक के सामने विशाल मुहल्ला था। यहीं बारात को रोटी खिलाने का प्रबन्ध किया जा रहा था। एक शामियाना लगाया गया था, बिरादरी के बैठने के लिए दरी बिछ गई थी और पाँच छः हुक़्क़े भी मुहल्ले से इकट्ठे करके रख दिये गये थे। सुबह-शाम बिरादरीवालों की बैठक होती, मुहल्ले के चौधरी साहब से परामर्श होता और बाक़ी सारा दिन यहाँ मुहल्ले के लड़कों की धमाचौकड़ी मचती। इस कोलाहल में भी मैं मौन, स्थिर,

अविचल भाव से अपने कमरे में बैठा सोचा करता। सोचा करता—यदि जमना मेरी पत्नी न होती, यदि मैं अबिवाहित होता, तो क्या मैं सरला से बिवाह न कर लेता ? अवश्य कर लेता। वह जीवन कितना आनन्दमय होता ! कल्पना उस उल्लास-जनक जिन्दगी के बीसों दृश्य मेरे सामने ला खड़े करती।

इसी भाँति कल्पना के इस सुनहले संसार की सैर करते-करते बहुत दर हो जाती और जब मैं उठता, तो शरीर थका हुआ, चेहरा उतरा हुआ और हृदय क्लांत प्रतीत होता था।

जमना को इन दिनों मेरी हालत देखने का अवकाश न था। वह अपने प्रश्नों से मुझे परेशान न करती थी और मैं शांत मुद्रा से अकंटक इस दुनिया की सैर किया करता। सोचता, थक जाता, और फिर सोचता—क्या हुआ, यदि सरला जा रही है। क्या हुआ, यदि मैं उस पर अपना प्रेम प्रकट न कर सका। क्या हुआ, यदि उसकी सूरत तक देखने को न मिलेगी; पर उसकी प्यारी निशानी—उसका रेशमी रूमाल तो मेरे पास है, उसे देखकर जी सकता हूँ। सच कहता हूँ—प्रलय पर्यन्त जी सकता हूँ !

अन्तिम दिन था, सरला की बिदाई होने वाली थी, स्त्रियाँ दाम-दहेज की तैयारियों में व्यस्त थीं। जमना को अपनी सुध-बुध न थी; पर मैं अपने कमरे में बैठा था, किवाड़ बन्द करके नहीं; बल्कि सब किवाड़ खोल कर। आज मैं अन्तिम बार उसको जाते देखना चाहता था। कौन जानें फिर उसके बाद वह सुन्दर, प्यारा, मनोमुग्धकारी मुख देखना नसीब भी हो या नहीं ?

मैं बैठा था, एकटक, उस डिबिया को देख रहा था। कुछ सोच रहा था। क्या सोच रहा था, नहीं जानता। मस्तिष्क कुछ थका हुआ-सा थ और आँखें जल-सी रही थीं।

सरला की बिदाई में कोई एक-डेढ़ घन्टा रह गया होगा कि किसी ने धीरे से मेरे कमरे की चिक उठाई। देखा, सरला सामने खड़ी है—सुन्दरता, सुषमा, आकर्षण, लालित्य, हर्ष, और उल्लास की जीवित मूर्ति !

'मैं आपसे कोई निशानी माँगने आई हूँ।' उसकी चंचल आँखों ने कमरे की तलाशी-सी ले ली।

मैंने दीर्घ निःश्वास छोड़ा, क्या निशानी देता! जो कुछ मेरा था वह तो पहले ही दे चुका था। बोला—क्या दूँ तुम्हें, मेरे पास तुम्हारे योग्य कुछ हो भी?

'कुछ क्यों नहीं, सब कुछ है।' उसकी चंचल निगाह फिर इधर-उधर घूमी और फिर मेज़ पर पड़ी हुई संगमरमर की डिब्बिया पर जम गई।

'बस मैं यह लूँगी।'

मैंने उसे रोकने के लिए हाथ बढ़ाया—न, न, करता रहा।

'मैं इसे आपकी निशानी के तौर पर अपने पास रखूँगी।' और वह डिब्बिया को सीने से लगाकर भाग गई। मैं कुर्सी में धँस गया।

वह सीढ़ियों पर खट-खट-खट चढ़ी जा रही थी, मैं मानों पाताल में धँसा जा रहा था।